श्री कुन्दकुन्दाचार्यविरचिता

बारस अणुवेक्खा

卐

श्री सत्श्रुत-सेवा-साधना केन्द्र

श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

कोबा-३८२००९ (जिला गांधीनगर) गुजरात

समर्पण

संसार समुद्रका किनारा जिनका सन्निकट है,
जिनके अन्तःस्तलमें सातिशय विवेकज्योति प्रकट हुई है,
समस्त एकान्तवादरूप अविद्याका अभिनिवेश जिनका अस्त हुआ है,
पारमेश्वरी अनेकांत–विद्याके जो पारगामी हैं,
समस्त पक्षपरिग्रहसे मुक्त हो जानेसे जो अत्यन्त मध्यस्थ हैं,
सर्व पुरुषार्थोंमें सारभूतपना होनेसे आत्माके लिए अत्यन्त उत्कृष्ट, परम हितरूप, भगवान पंचपरमेष्ठीके प्रसादसे उपजन्य परमार्थसत्य अविनाशी मोक्षलक्ष्मीको जिन्होंने उपादेयरूप निश्चित किया है ऐसे सातिशय भेदविज्ञानी, अध्यात्मविद्या–विशारद,
युगप्रधान, अप्रमत्त योगीश्वर श्री कुन्दकुन्द आचार्यके अति पावन चरणोंमें यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

आचार्य कुन्दकुन्द–द्विसहस्राब्दि वर्षके उपलक्षमें प्रकाशित

भगवद् आचार्य कुन्दकुन्दविरचिता

बारस अणुवेक्खा

(द्वादश अनुप्रेक्षा)

हिन्दी पद्यानुवाद : आचार्यश्री विद्यासागरजी

गुजराती पद्यानुवाद : ब्र.श्री चुनीलालजी देसाई (राजकोट)

श्रद्धेय श्री आत्मानन्दजी (कोबा)

प्रकाशक

श्री सत्श्रुत–सेवा–साधना केन्द्र

मुख्य स्थल : श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

कोबा – ३८२ ००९ जि. गांधीनगर (गुजरात)

प्राप्तिस्थान :

श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र,

कोबा– ३८२ ००९ (जि. गांधीनगर) गुजरात

फोन : ०२७१२–२२९५८

प्रथमावृत्ति २०००

वि.सं. २०४५, वीर.नि.सं. २५१५. ईस्वी सन् १९८९

मूल्य : पांच रुपये

मुद्रक :

राकेश के देसाई

चन्द्रिका प्रिन्टरी

लेसर टाइपसेटिंग युनिट

मिरझापुर रोड

अहमदाबाद – ३८० ००१

फोन – २०५७८, २४१८८

अप्रमत्त योगीश्वर आचार्य श्रीकुन्दकुन्ददेव

अध्यात्मयुगप्रवर्तक आचार्य श्री कुन्दकुन्द

जन्ममंगल : वीर नि.सं.५१४, ईसुकी प्रथम शताब्दीमें अनन्तपुर जिले (आन्ध्रप्रदेश) के गुण्टूकल स्टेशनसे लगभग चार मील दूर कोण्डकुण्डमें जन्मे।

मुनिदीक्षा : वीर नि.सं.५२५, जिनशासनकी प्रभावना एवं आध्यात्मिक क्रान्तिकी जन्मघूटी पीकर, उसे साकार करने हेतु मात्र ११ वर्षकी आयुमें ही मुनिव्रत अंगीकार किये।

आचार्यपद : वीर नि.सं. ५५८, सातिशय ज्ञान, उत्तम संयम और सर्वतोमुखी प्रतिभा के बलसे केवल ४४ वर्षकी आयुमें आचार्यपदकी गरिमा एवं दायित्वका अनदेखा निर्वहन।

साहित्यनिर्माण: आचार्यश्री मूलसंघके अग्रणी हुए एवं भगवान महावीरके जगहितकारी उपदेशको सूत्रबद्ध किया। तत्कालीन जनभाषा प्राकृतमें लगभग चौरासी पाहुडोंका प्रणयन। जिनमें समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड, रयणसार, बारस अणुवेक्खा आदि प्रमुख तथा उपलब्ध ग्रन्थ हैं। विश्रुति है कि 'परिकर्म' नामक विशालकाय ग्रन्थके प्रणेता भी आप ही हैं। विश्वप्रसिद्ध 'कुरलकाव्य' की रचना भी आपकी मानी जाती है।

अपूर्व प्रभाव : पश्चाद्वर्ती सभी आचार्यों पर कुन्दकुन्दका अमिट प्रभाव रहा है। आ. अमृतचन्द्र, आ. जयसेन, आ. पद्मप्रभमलधारिदेव, आ. देवसेन आदि सभी प्रभावशाली आचार्योंने उनका अनुसरण किया है।

स्वर्गारोहण : वीर नि.सं.६०९, करीब ९५ सालकी उम्रमें, कुन्दादि पर्वत(कर्णाटक)।

प्रस्तावना

सच्चे ज्ञान और वैराग्यके माध्यमसे देहदेवलमें स्थित आत्माके विकासको सिद्ध करके शाश्वत अतीन्द्रिय आनंदको प्राप्त करनेकी परम्परा हमारे देशमें अति प्राचीन कालसे सुचारु रीतिसे चली आयी है । तीर्थंकरोने, ऋषि–मुनियोंने और संतोने इसी मार्ग पर चलकर जीवनके चरम लक्ष्य को सिद्ध करनेका दिव्य, महान, आश्चर्यकारक एवं अनुपम पराक्रम किया है। उन्हींके द्वारा दिग्दर्शित पावन पथ पर चलकर आज भी साधकगण अपने जीवनको दिव्य ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंदकी ओर अग्रेसर कर रहे हैं।

वैराग्यभावकी उत्पत्ति, संरक्षण एवं संवर्धनको लक्ष्यमें रखकर श्रमण परम्परामें बारह भावनाओंका बहुत बडा महत्त्व है। प्राग्–ऐतिहासिक कालसे लेकर प्राचीनयुगमें, मध्ययुगमें एवं अर्वाचीन युगमें महान आचार्योंने, सन्त–ज्ञानी पुरुषोंने एवं विद्वानोंने कोडीबद्ध उत्तम रचनाएं गद्य–पद्य मय शैलीमें की है । दोनों आम्नायोंके आगम–ग्रन्थोंमें, तत्वार्थसूत्रकी सभी मुख्य टीकाओंमें, मध्ययुगीन आचार्योंके ग्रन्थोंमें, पूजाग्रन्थोंकी जयमालाओंमें तथा अर्वाचीन युगमें प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओंमें लिखित रचनाओंकी संख्या एक शतकसे भी अधिक होगी।

मूलग्रन्थोंके भागरूप होनेसे बारह भावनाएं ऐसे तो प्रचुर मात्रामें पढी जाती हैं फिर भी पृथकरूपसे पढी जानेवाली और विशेष प्रचलित एवं लोकप्रिय रचनाएं श्री स्वामिकार्तिकेयकी, श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी, श्री उमास्वातिके प्रशम–रतिप्रकरणकी, श्री विनयविजयजीकी एवं पंडित भूधरदासजीकी रही हैं।

प्रस्तुत पुस्तिकामें आचार्यप्रवर, अध्यात्मविद्याविशारद श्री कुन्दकुन्द–स्वामीकी रची हुई बारह भावनाओंको प्रस्तुत कर रहे हैं। उन महापुरुषका मानवमात्र पर महान उपकार है, क्योंकि शाश्वत आनन्दकी प्राप्तिका मार्ग उन्होंने अपनी अनुभव वाणीसे हम सबके सामने प्रस्तुत किया है। उनकी २००० वीं जन्मजयन्ति–महोत्सवके उपलक्ष्यमें उनकी यह कृति उन्हींके पावन चरणकमलोंमें समर्पित करते हैं।

इस लघुकृतिमें प्रत्येक पृष्ठ पर एक एक गाथा अवतरित की है। सबसे

ऊपर मूल गाथा और बादमें हिन्दी पद्यानुवाद, गुजराती पद्यानुवाद, हिन्दी गद्यानुवाद एवं गुजराती गद्यानुवाद ऐसा अनुक्रम रक्खा है। हिन्दी पद्यानुवाद पूज्य आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज रचित है, जबकि गुजराती पद्यानुवादकी रचना लेखकद्वय ब्र. श्री चुनीलालजी देसाई एवं श्रद्धेय श्री आत्मानंदजी की हैं। इनमें 'हरिगीत' छंद के रचयिता स्व.ब्र. श्री चुनीलालजी (राजकोट) और 'वसंततिलका' के रचयिता इस प्रकाशक-संस्था के प्रेरक एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शक श्रद्धेय श्री आत्मानन्दजी (डॉ. सोनेजी) हैं। गुजराती गद्यानुवाद ब्र.श्री चुनीलालजी एवं श्री प्रकाशभाई शाह ने किया है।

मूल ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय, जैसा कि उसके नामसे ही विदित होता है, वैराग्य है। यह वैराग्यका विषय जगतके समस्त साधकोंको अभिप्रेत है क्योंकि विवेकज्ञान/आत्मज्ञान/सम्यकत्व की उत्पत्ति उसके बिना संभव नहीं है।

एक और विशेषता इस ग्रन्थकी यह है कि उसमें कोरा वैराग्य प्रतिपादित नहीं किया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थकी उद्‌भूति एक महा वैराग्यवान् युगपुरुषसे हुई है, फिर भी उसमें जगह जगह वैराग्यरूप साधनसे प्राप्त करने योग्य शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन-आनंदघन स्वभाववाला जो आत्म-तत्त्व, उसकी ओर लक्ष करनेकी, उसको ध्यानमें रखनेकी और उसीके साक्षात्कारके उद्यममें जागृत रहनेकी आज्ञा दी गई है, ताकि वैराग्यका सच्चा फल भी आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दको प्राप्त करना ही है – यह दृष्टि छूटने न पावे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रकाशक संस्थाकी नीतिके अनुरूप प्रगट हुई इस कृतिको पाठक-अभ्यासी-विद्वान-त्यागीगण स्वागत करेंगें और पुस्तकमें जो कुछ भी क्षतियां मालूम पडें तो उसकी ओर भी अंगुलिनिर्देश करेंगें जिससे कि अगले संस्करणमें उनको सुधारा जा सके। ऐसी भी भावना है कि अभी तक हमारे प्रकाशन (कुल संख्या लगभग २५), जो मुख्यरूपसे गुजराती माध्यमसे प्रकट हुए हैं, उनमें हिन्दी एवं अंग्रेजी प्रकाशन भी सम्मलित होंगे जिससे कि स्व-पर जीवनके बहुलक्षी विकासमें उपयोगी ये प्रकाशन विशाल पाठकगण तक सरलतासे पहुंच सकें ।

पूज्य आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराजने उनकी कृतिको प्रकाशित

करनेकी हमें सम्मति दी, अतः हम उनके ऋणी हैं। संस्थाके प्रकाशनोंमें जिनका हार्दिक सहयोग हमेशा रहेता है ऐसे ब्र.श्री प्रकाशभाई डी. शाहने इस कृतिको प्रकाशित करनेमें काफी प्रेम-परिश्रम किया है, इस विशिष्ट सहयोगके लिए हम सधन्यवाद उनके आभारी हैं। बहनश्री बिन्दुबहेन पारेखने भी इस ग्रन्थके प्रकाशनमें अच्छा सहयोग दिया है, अतः हम उनके भी आभारी हैं। आशा है कि आगेके प्रकाशनोंमें भी वे ऐसे ही सक्रिय रहकर अपने ज्ञानार्जनकी एवं साहित्यरुचिकी वृद्धि करेंगें।

ग्रन्थके प्रकाशंनमें श्रीमती मुक्ताबहेन पारेख हस्ते. उषाबहेन-बिन्दुबहेन- नयनाबहेन पारेख (राजकोट), श्रीमती शान्ताबहेन डी. शाह हस्ते. श्री प्रकाशभाई एवं श्री प्रकाशभाई एस.शाह (गांधीनगर) का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

ग्रन्थका लेसर कम्पोझिंग कार्य बडी तत्परता से श्री राकेशभाई, चन्द्रिका प्रिन्टरीवालोंने किया है, अतः वे धन्यवादके पात्र हैं। प्रूफरीडींगके कार्यमें श्री बाबुलाल सिद्वसेन जैन ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं ।

अन्तमें अभ्यासी और साधकसमुदाय इस उत्तम ग्रन्थका अध्ययन-अध्यापन करके स्व-पर कल्याणमें लगेंगे ऐसी भावनासहित,

अध्यात्मसाधकोंकी सेवामें तत्पर,
ग्रन्थ प्रकाशन समिति,
श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र,
कोबा, गांधीनगर (गुजरात)

* विषय-सूचि *

१. अनित्यभावना	८	७. अशुचिभावना	४८
२. अशरणभावना	१३	८. आस्रवभावना	५२
३. एकत्वभावना	१९	९. संवरभावना	६६
४. अन्यत्वभावना	२६	१०. निर्जराभावना	७१
५. संसारभावना	२९	११. धमभावना	७३
६. लोकभावना	४४	१२. बोधिदुर्लभभावना	८८

श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचिता

बारस अणुवेक्खा

(द्वादशानुप्रेक्षा)

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तमखविददीहसंसारे ।
दस दस दो दो य जिणे दस दो अणुपेहणं वोच्छे।।१।।

मंगलाचरण प्रतिज्ञावाक्य

वसंततिलका

उत्कृष्ट ध्यान बलसे भव बंध तोडा,
वे सिद्ध, ढोक उनको द्वय हाथ जोडा ।
चौबीस तीर्थंकरकी कर वंदना मैं,
पश्चात् कहूं सुखद द्वादश भावनाएं ।। १ ।।

(વસંતતિલકા)

ઉત્કૃષ્ટ ધ્યાનબળથી ભવબંધ તોડી,
સિદ્ધિ વર્યા વંદુ હું- દ્વયહાથ જોડી.
ચોવીશ તીર્થપતિને કરું છું પ્રણામ,
પશ્ચાદ્ કહું છું ભાવના સુખકાર બાર. ૧

अर्थ– अपने परमशुक्ल ध्यानसे अनादि अनंत संसारको क्षय करनेवाले सम्पूर्ण सिद्धोंको तथा चौबीस तीर्थंकरोंको नमस्कार करके मैं बारह भावनाओंका स्वरूप कहता हूं ।

પરમશુક્લ ધ્યાનથી અનાદિ અનંત સંસારનો ક્ષય કરવાવાળા સર્વ સિદ્ધ-ભગવંતોને તથા ચૌવીશ તીર્થંકરોને નમસ્કાર કરીને હું બાર ભાવનાનું સ્વરૂપ કહું છું.

बारह अनुप्रेक्षाओंके नाम

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसार लोगमसुचित्तं ।
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोहिं च चिंतेज्जो ।। २ ।।

संसार, लोक, वृष, आस्रव, निर्जरा है,
अन्यत्व औ अशुचि, अध्रुव, संवरा है ।
एकत्व औ अशरणा अवबोधना ये,
भावे सुधी सतत द्वादश भावनाएं ॥ २ ॥

સંસાર, લોક, વૃષ, આસ્રવ, નિર્જરા છે,
અન્યત્વ ને અશુચિ અધ્રુવ સંવરા છે,
એકત્વ ને અશરણા અવબોધના જે,
આ બાર ભાવનાને સુધી નિત્ય ભાવે. ૨

अर्थ–अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधिदुर्लभ इन बारह भावनाओंका चिन्तवन करना चाहिये।

અનિત્ય, અશરણ, એકત્વ, અન્યત્વ, સંસાર, લોક, અશુચિત્વ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, ધર્મ અને બોધિદુર્લભ આ બાર ભાવનાઓનું ચિન્તવન કરવું જોઇએ.

अथ अनित्यभावना

वरभवणजाणवाहणसयणासण देवमणुवरायाणं ।
मादुपिदुसजणभिच्चसंबंधिणो य पिदिवियाणिच्चा ।।३।।

सर्वोत्तमा भवन वाहन यान सारे,
ये आसनादि शयनादिक प्राण प्यारे।
माता पिता स्वजन सेवक दास दासी,
राजा प्रजाजन सुरेश विनाश राशी ।।३।।

(હરિગીત)

મનુ દેવ રાજનના મહેલ રથ શયન આસન વાહનો,
માતા પિતા સ્ત્રી સ્વજન દાસ અનિત્ય સર્વ સંબંધીઓ. ૩

अर्थ– देवताओंके, मनुष्योंके और राजाओंके सुन्दर महल, यान, वाहन, सेज, आसन, माता, पिता, कुटुम्बीजन, सेवक, सम्बन्धी(रिश्तेदार) ओर काका आदि सब अनित्य हैं अर्थात् ये कोई सदा रहेनेवाले नहीं हैं। पवधि बीतनेपर सब अलग हो जावेंगे।

દેવતાઓ, મનુષ્યો અને રાજાઓના સુન્દર મહેલ, યાન, વાહન, સેજ, આસન, માતા, પિતા, કુટુંબીજન, સેવક, સંબંધી અને કાકા વગેરે સર્વ અનિત્ય છે. અર્થાત્ આ કોઈ કાયમ ટકવાનાં નથી. સમય પૂરો થયે બધાં અલગ થઈ જશે.

सामग्गिंदियरूबं आरोग्गं जोवणं बलं तेजं ।
सोहग्गं लावण्णं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ।।४।।

लावण्य–लाभ बल यौवन रूप प्यारा,
सौभाग्य इन्द्रिय सतेज अनूप सारा ।
आरोग्य संग सबमें पल आयुवाले,
हो नष्ट ज्यों सुरधनू बुध यों पुकारे ।।४।।

ઇન્દ્ર ધનુ સમ ઇંદ્રિયો આરોગ્ય યૌવન બળપણું,
સૌભાગ્ય ને સૌંદર્ય કાંતિ કોઈ નહિ શાશ્વત કહ્યું. ૪

—

अर्थ– जिस तरहसे आकाशमें प्रगट होनेवाला इन्द्रधनुष् थोडी ही देर दिखलाई देकर फिर नहीं रहता है, उसी प्रकारसे पांचों इन्द्रियोंका स्वरूप, आरोग्य (निरोगता) जोबन, बल, तेज, सौभाग्य और सौन्दर्य (सुन्दरता) सदा शाश्वत नहीं हैं। अर्थात् ये सब बातें निरन्तर एकसी नहीं रहती हैं– क्षणभंगुर हैं ।

જેવી રીતે આકાશમાં દેખાતું મેઘધનુષ્ય થોડી જ વારમાં દેખાઈને અદ્રશ્ય થઈ જાય છે, તેવી રીતે પાંચ ઈન્દ્રિયોનું સ્વરૂપ, આરોગ્ય, યુવાની, બળ, તેજ, સૌભાગ્ય અને સુંદરતા કાયમ ટકતાં નથી. અર્થાત્ આ બધી જ વસ્તુઓ ક્ષણભંગુર છે.

जलबुब्बुदसक्कधणूखणरुचिघणसोहमिव थिरं ण हवे ।
अहमिंदट्ठाणाइं बलदेवप्पहुदिपज्जाया ॥५॥

हो के मिटे कि बलदेव नरेन्द्रका भी,
नागेन्द्रका सुपद त्यों न सुरेन्द्रका भी ।
ये मेघ दृश्य सम या जलके बबूले,
विद्युत् सुरेश धनुसे नसते समूले ॥५॥

(વસંતતિલકા)

બનીને મટે છે બળદેવ નરેન્દ્રની પણ,
નાગેન્દ્ર તેમજ સુરેશની પદવીઓ પણ,
આ મેઘ જેમ વળી, પાણી તરંગ જેવા,
આકાશ ચાપ વિજળી સમ નષ્ટ થાતાં. ૫

अर्थ– अहमिन्द्रोंकी पदवियां और बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती आदिक. पर्यायें पानीके बुलबुलेके समान, इन्द्रधनुषकी शोभाके समान, बिजलीकी चमकके समान और बादलोंकी रंगबिरंगी शोभाके समान स्थिर नहीं है। अर्थात् थोडे ही समयमें नष्ट हो जानेवाली हैं ।

અહમિન્દ્રની પદવીઓ અને બલદેવ, નારાયણ, ચક્રવર્તીની પર્યાયો પાણીના પરપોટાની માફક, મેઘધનુષ્યની શોભા સમાન, વીજળીના ઝબકારા સમાન અને વાદળોની રંગબેરંગી શોભાની સમાન સ્થિર નથી. અર્થાત્ થોડા જ સમયમાં નષ્ટ થવાવાળી છે.

जीवणिबद्धं देहं खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं ।
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि ।।६।।

लो! क्षीर नीर सम मिश्रित, काय यों ही,
जो जीवसे द्रढ बंधा नश जाय मोही ।
भोगोपभोग अघ–कारण द्रव्य सारे,
कैसे भले ध्रुव रहें व्ययशील वाले ।।६।।

જે ક્ષીરનીરવત્ એક સ્થળે રહે છે
તે દેહ જીવ થઈ શીઘ્ર જુદા બને છે
ભોગોપભોગકરણ આ સૌ ભિન્ન દ્રવ્યો
ક્ષણ જીવી જાણી રે! રે! તજો મોહ ભવ્યો: ૬

अर्थ– जब जीवसे अत्यंत संबंध रखनेवाला शरीर ही दूधमें मिले हुए पानीकी तरह शीघ्र नष्ट हो जाता है, तब भोग और उपभोगके कारण दूसरे पदार्थ किस तरह नित्य हो सकते हैं? अभिप्राय यह है कि, पानीमें दूधकी तरह जीव और शरीर इस तरह मिलकर एकमेक हो रहे हैं कि जुदे नहीं मालूम पडते हैं। परंतु इतनी सघनतासे मिले हुए भी ये दोनों पदार्थ जब मृत्यु होनेपर अलग २ हो जाते हैं, तब संसारके भोग और उपभोगके पदार्थ जो शरीरसे प्रत्यक्ष ही जुदे तथा दूर हैं सदाकाल कैसे रह सकते हैं ?

ક્ષીર નીરવત્ જીવનિબધ્ધ દેહ શીઘ્ર નાશ પામે છે તો ભોગોપભોગના સાધન બીજા પદાર્થો કેવી રીતે નિત્ય હોઈ શકે?

परमट्ठेण दु आदा देवासुरमणुवरायविविहेहिं ।
वदिरित्तो सो अप्पा सस्सदमिदि चिंतये णिच्चं ।।७।।

है वस्तुतः नर सुरासुर वैभवोंसे,
आत्मा रहा पृथक् भिन्न भवों भवोंसे ।
ऐसा करो सतत चिंतन, जी रहा है,
आत्मा वही अमर शाश्वत ही रहा है ।।७।।

(હરિગીત)

છે સુર અસુર નર ભૂપ વૈભવ ભિન આત્મસ્વરૂપથી;
નિજ આત્મ શાશ્વત જ્ઞાનરૂપ નિત ધ્યાવવું પરમાર્થથી ૭

अर्थ– शुद्ध निश्चयनयसे (यथार्थमें) आत्माका स्वरूप सदैव इस तरह चिन्तवन करना चाहिये कि, यह देव, असुर, मनुष्य और राजा आदिके विकल्पोंसे रहित है। अर्थात् इसमें देवादिक भेद नहीं हैं– ज्ञानस्वरूपमात्र है और सदा स्थिर रहनेवाला है।

દેવ, અસુર, મનુષ્ય અને રાજાઓના વૈભવ આદિથી આત્માનું સ્વરૂપ સદા ભિન્ન છે, અને પોતાનો આત્મા સદા શાશ્વત જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, એમ શુદ્ધ નિશ્ચયનયથી ધ્યાવવા યોગ્ય છે.

अथ अशरणभावना

मणिमंतोसहरक्खा हयगयरहओ य सयलविज्जाओ ।
जीवाणं ण हि सरणं तिसु लोए मरणसमयम्हि ।।८।।

छोडे बडे रथ खडे मणि मंत्र हाथी,
विद्या दवा सकल रक्षक संग साथी ।।
पै मृत्युके समयमें जगमें हमारे,
होंगे नहीं शरण ये बुध यों विचारे ।।८।।

નહિ મરણ સમયે જીવને કોઈ શરણ ત્રણ લોકમાં,
રથ હાથી ઘોડા રક્ષકો મણિ મંત્ર ઔષધિ બોધિમાં. ૮

अर्थ– मरते समय प्राणीयोंको तीनों लोकोंमें मणि, मंत्र, औषधि, रक्षक, घोडा, हाथी, रथ और जितनी विद्याएं हैं, वे कोइ भी शरण नहीं हैं। अर्थात् ये सब उन्हें मरनेसे नहीं बचा सकते हैं ।

મરણ સમયે જીવોને ત્રણ લોકમાં રથ, હાથી, ઘોડા, રક્ષકો, મણિ, મંત્ર, વિદ્યા, ઔષધિ આદિ કોઈ પણ શરણ નથી.

सग्गो हवे हि दुग्गं भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं ।
अइरावणो गइंदो इंदस्स ण विज्जदे सरणं ।।९।।

है स्वर्ग–दुर्ग–सुरवर्ग सुभृत्य होता,
है वज्र शस्त्र जिसका वह इन्द्र होता ।
ऐरावता गज गजेन्द्र सवार होता,
ना! ना! उसे शरण अंतिम बार होता ।।९।।

છે સ્વર્ગ કિલ્લો ઇન્દ્રને વળી વજ્રનાં હથિયાર છે,
ગજરાજ ઐરાવત છતાં નહિ ઇન્દ્રને કો શરણ છે. ૯

अर्थ– जिस इन्द्रके स्वर्ग तो किला है, देव नौकर चाकर हैं, वज्र हथियार है, और ऐरावत हाथी है, उसको भी कोई शरण नहीं है। अर्थात् रक्षा करनेकी ऐसी श्रेष्ठ सामग्रियोंके होते हुए भी उसे कोई नहीं बचा सकता है। फिर हे दीन पुरुषो ! तुम्हें कौन बचावेगा ?

ઇન્દ્રને સ્વર્ગરૂપી કિલ્લો છે, દેવલોક જેના નોકર ચાકર છે, વજ્રમય જેનાં હથિયારો છે, અને ઐરાવત જેવો શ્રેષ્ઠ ગજેન્દ્ર છે, છતાં તેને કોઈ શરણ નથી.

णवणिहि चउदहरयणं हयमत्तगइंदचाउरंगबलं ।
चक्केसस्स ण सरणं पेच्छंतो कदिदये काले ॥१०॥

अश्वादि पूर्ण बल है चतुरंग सेना,
दो सात रत्न, निधियां नव रंग लेना ।
चक्रेशको शरण ये नहिं अन्तमें हो,
खा जाय काल लखते लखते इन्हें वो ॥१०॥

ચતુરંગી સેના ચૌદ રત્નો નવનિધિ આદિક રહે,
નહિ ચક્રીને યે શરણ કોઈ મૃત્યુ જવ આવી ગ્રહે. ૧૦

अर्थ– हे भव्यजनो ! देखो, इसी तरह कालके आ दबानेपर नौ निधियां, चौदह रत्न, घोडा, मतवाले हाथी और चतुरंगिनी सेना आदि रक्षा करनेवाली सामग्री चक्रवर्तीको भी शरण नहीं होती है। अर्थात् जब मौत आती है, तब चक्रवर्तीको भी जाना पडता है। उसका अपार वैभव उसे नहीं बचा सकता है।

ચક્રવર્તીને ચતુરંગી સેના, ચૌદરત્નો, નવનિધિ આદિ સામગ્રીઓ હોવા છતાં કોઈ મરણ સમયે બચાવી શકતું નથી.

जाइजरमरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा ।
तम्हा आदा सरणं बंधोदयसत्तकम्मवदिरित्तो ।।११।।

लो रोगसे जननमृत्यु जरादिकोंसे,
रक्षा निजात्म निजकी करता अघोंसे ।
त्रैलोकमें इसलिए निज आतमा ही,
है वस्तुतः शरण लो अघ खातमा ही ।।११।।

રક્ષા કરે આત્મા સ્વયં જનિ મૃતિ જરા ભય રોગથી,
તેથી શરણ નિજ આત્મ છે ભિન્ન બંધ સત્તા ઉદયથી. ૧૧

अर्थ– जन्म, जरा, मरण, रोग और भय आदिसे आत्मा ही अपनी रक्षा करता है; इसलिये वास्तवमें (निश्चयनयसे) जो कर्मोंकी बंध, उदय और सत्ता अवस्थासे जुदा है, वह आत्मा ही इस संसारमें शरण है। अर्थात् संसारमें अपने आत्माके सिवाय अपना और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। यह स्वयं ही कर्मोंको खिपाकर जन्म जरा मरणादिके कष्टोंसे बच सकता है।

પોતાનો આત્મા જ જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, ભયથી પોતાની રક્ષા કરે છે. કર્મોનાં બંધ, સત્તા, ઉદયથી પોતાનો આત્મા ભિન્ન જાણી, પોતાનો આત્મા જ પોતાને શરણ છે.

अरुहा सिद्धा आइरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
ते वि हु चेट्ठदि जम्हा आदा हु मे सरणं ॥१२॥

ये पांच इष्ट अरहंत सुसिद्ध प्यारे,
आचार्यवर्य उवझाय सुसाधु सारे ।
आत्मा निजात्ममय ही करता इन्हें है,
आत्मा अतः शरण है जमता मुझे है ॥१२॥ ।

અરિહંત સિધ્ધ આચાર્યને મુનિ ઉપગુરુ પરમેષ્ઠિ છે,
તે આત્માના પરિણામ તેથી આત્મ મારો શરણ છે. ૧૨

अर्थ– अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी इस आत्माके ही परिणाम हैं। अर्थात् अरहंतादि अवस्थाएं आत्माहीकी हैं। आत्मा ही तपश्चरण आदि करके इन पदोंको पाता है। इसलिये आत्मा ही मुझको शरण है ।

અર્હંત, સિધ્ધ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને સાધુએ પાંચ પરમેષ્ઠિઓ પણ મારા આત્માનાં જ પરિણામ છે, તેથી મારો આત્મા જ મને શરણ છે.

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं च सत्तवो चेव ।
चउरो चेट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणम् ।।१३।।

सद्ज्ञान और समदर्शन भी लखे हैं,
सच्चा चरित्र तप भी जिसमें बसे हैं ।
आत्मा वही नियमसे समझो कहाता,
आत्मा अतः शरण हो मम प्राण त्राता ।।१३।।

સુજ્ઞાન, દર્શન, ચરિત, તપ નિજ આત્મના પર્યાય છે;
તેથી શરણ મુજ આત્મનું મુજ આત્મને જ સદાય છે. ૧૩

अर्थ– इसी तरहसे आत्मामें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और उत्तम तप ये चार अवस्थाएं भी होती हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शनादि आत्माहीके परिणाम हैं, इसलिये मुझे आत्मा ही शरण है।

સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યક્તપ એ ચાર અવસ્થાઓ પણ આત્માની જ થાય છે, તેથી મારો આત્મા જ મને શરણ છે, તેમ હે જીવ! તું જાણ.

अथ एकत्वभावना

एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि दीहसंसारे ।
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१४।।

आत्मा यही विविध कर्म करे अकेला,
संसारमें भटकता चिरसे अकेला ।
है एक ही जनमता मरता अकेला,
है भोगता करमका फल भी अकेला ।।१४।।

જીવ એકલો કરે કર્મ ભ્રમણ કરે અનંત ભવ એકલો,
વળી એકલો જન્મે મરે, ફળ ભોગવે પણ એકલો. ૧૪

अर्थ– यह आत्मा अकेला ही शुभाशुभ कर्म बांधता है, अकेला ही अनादि संसारमें भ्रमण करता है, अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही अपने कर्मोंका फल भोगता है। इसका कोई दूसरा साथी नहीं है ।

આ (પોતાનો) આત્મા એકલો જ કર્મ બાંધે છે, એકલો જ દીર્ઘ સંસારમાં ભ્રમણ કરે છે, એકલો જ જન્મે છે, એકલો જ મરે છે અને એકલો જ પોતાનાં કર્મનું ફળ ભોગવે છે.

एक्को करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥१५॥

है एक ही विषयकी मदिरा सदा पी,
औ तीव्र लोभवश हो, कर पाप पापी ।
तिर्यंचकी नरककी दुःख योनियोंमें,
भोगे स्व-कर्मफल एक भवों भवोंमें ॥१५॥

ઇંદ્રિય વિષયવશ તીવ્ર લોભે પાપ કરતો એકલો,
ફળ ભોગવે તિર્યંચ નારક યોનિનું દુઃખ એકલો. ૧૫

अर्थ- यह जीव पांचइन्द्रियके विषयोंके वश तीव्रलोभसे अकेला ही पाप करता है और नरक तथा तिर्यंच गतिमें अकेला ही उनका फल भोगता है। अर्थात् उसके दुःखोंका बटवारा कोई भी नहीं करता है।

આ જીવ, પાંચ ઇન્દ્રિયના વિષયોને વશ થઈ, તીવ્ર લોભથી એકલો પાપ કરે છે અને નરક તિર્યંચ ગતિમાં એકલો જ તેનું ફળ ભોગવે છે.

एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।
मणुवदेवेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१६।।

दे पात्र दान उस धर्म निमित्त आत्मा,
है एक ही करत पुण्य अये महात्मा ।
होता मनुष्य फलतः दिवि देव होता,
पै एक ही फल लखे स्वयमेव ढोता ।।१६।।

(વસંતતિલકા)

સુપાત્ર દાન દઈ ધર્મ નિમિત્ત આત્મા,
સંચય કરે પુણ્ય તણો મહાત્મા,
તે મનુજ દિવ્યપદ પામી બને દેવાત્મા,
ભોગવે સ્વયં સુર-સુખો પણ તે જ આત્મા. ૧૬

अर्थ– और यह जीव धर्मके कारणरूप पात्रदानसे अकेला ही पुण्य करता है और मनुष्य तथा देवगतिमें अकेला ही उसका फल भोगता है।

આ જીવ ધર્મના નિમિત્તથી પાત્રદાન દ્વારા એકલો જ પુણ્ય સંચય કરે છે અને મનુષ્ય તથા દેવગતિમાં એકલો જ તેનું ફળ ભોગવે છે.

पात्रके तीन भेदों तथा अपात्रका वर्णन

उत्तमपत्तं भणयं सम्मत्तगुणेण संजुदो साहू ।
सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेयो ।।१७।।

उत्कृष्ट पात्र वह साधु अहो रहा है,
सम्यक्त्वसे सहित शोभित हो रहा है ।
सम्यकत्व धार इक देशव्रती सुहाता,
है पात्र मध्यम सुश्रावक ही कहाता ।।१७।।

ઉત્કૃષ્ટ પાત્ર અહો! સાધુ ગણાય છે જે,
સમ્યક્ત્વરત્ન સહ શોભિત જે વિરાજે,
જે શુધ્દ્દ્રષ્ટિસહ સંયમને ગ્રહે છે,
તે એકદેશવ્રતી શ્રાવક મધ્યમા છે. ૧૭

अर्थ– जो सम्यक्त्वगुणसहित मुनि हैं, उन्हें उत्तम पात्र कहा है और जो सम्यग्दृष्टी श्रावक हैं, उन्हें मध्यम पात्र समझना चाहिये।

સમ્યક્ત્વગુણ સહિત મુનિને (પાત્રદાન માટે) ઉત્તમ પાત્ર ગણવામાં આવે છે. સમ્યક્દ્રષ્ટિ શ્રાવકને મધ્યમ પાત્ર જાણવું.

णिदिदट्ठो जिणसमये अविरदसम्मो जहण्णपत्तोत्ति ।
सम्मत्तरयणरहियो अपत्तमिदि संपरिक्खेज्जो ।।१८।।

सम्यकत्व पा अविरती रहता सरागी,
होता जघन्य वह पात्र न पाप त्यागी ।
सम्यकत्वसे रहित मात्र अपात्र जानो,
भाई अपात्र अरु पात्र सही पिछानो ।।१८।।

સમ્યક્ત્વ પામી પણ, વ્રત નહિ ધારિયું છે,
પાત્ર જઘન્ય તે જિનમતમાં કહ્યો છે;
જેને ન પ્રાપ્ત થઈ છે સમ્યક્ પ્રતીતિ,
તેને અપાત્ર ગણવાની છે જૈન નીતિ. ૧૮

अर्थ– जिनभगवानके मतमें व्रतरहित सम्यग्दृष्टीको जघन्यपात्र कहा है और सम्यक्त्वरूपी रत्नसे रहित जीवको अपात्र माना है। इस तरह पात्र अपात्रोंकी परीक्षा करनी चाहिये।

જિનપરમાત્માના મતાનુસાર અવ્રતી સમ્યક્દૃષ્ટિને જઘન્ય પાત્ર કહ્યું છે અને સમ્યક્ત્વરૂપી રત્નરહિત જીવને અપાત્ર કહ્યું છે. આ રીતે પાત્ર અપાત્રની પરીક્ષા કરવી જોઈએ.

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ।।१९।।

वे भ्रष्ट हैं पतित दर्शन भ्रष्ट जो हैं,
निर्वाण प्राप्त करते न निजात्मको हैं ।
चारित्र भ्रष्ट पुनि चारित ले सिजेंगे,
पै भ्रष्ट दर्शनतया नहिं वे सिजेंगे ।।१९।।

તે ભ્રષ્ટ છે પતિત દર્શનભ્રષ્ટ જે છે,
તેને ન પ્રાપ્તિ નિર્વાણની થઈ શકે છે;
ચારિત્રભ્રષ્ટ વળી પ્રાપ્ત પુન: કરીને,
સીઝે ચરિત્ર, નહીં દર્શનભ્રષ્ટ સીઝે. ૧૯

अर्थ– जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं, वे ही यथार्थमें भ्रष्ट हैं। क्योंकि दर्शनभ्रष्ट पुरुषोंका मोक्ष नहीं होता है। जो चारित्रसे भ्रष्ट हैं, वे तो सीझ जाते हैं, परन्तु जो दर्शनसे भ्रष्ट हैं, वे कभी नहीं सीझते। अभिप्राय यह है कि जो सम्यग्दृष्टी पुरुष चारित्रसे रहित हैं, वे तो अपने सम्यकत्वके प्रभावसे कभी न कभी उत्तम चारित्र धारण करके मुक्त हो जावेंगे। परन्तु जो सम्यक्त्वसे रहित हैं अर्थात् जिन्हें न कभी सम्यक्त्व हुआ और न जबतक होगा वे चाहे कैसा ही चारित्र पालें, परन्तु कभी सिद्ध नहीं होंगे– संसारमें रुलते ही रहेंगे ।

જે સમ્યક્દર્શનથી ભ્રષ્ટ છે તે જ વાસ્તવમાં ભ્રષ્ટ છે કેમકે દર્શનભ્રષ્ટ પુરુષનો મોક્ષ થતો નથી. જે ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ છે તે તો ક્યારેક સીઝી શકે છે. (પુન: ચારિત્ર ગ્રહણ કરી સિધ્ધ થઈ શકે છે.) પરંતુ જે દર્શનથી ભ્રષ્ટ છે તે ક્યારેય સીઝતા નથી.

अनुष्टुपश्लोकः

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो णाणदंसणलक्खणो ।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतेइ सव्वदा ॥२०॥

मैं हूं विशुद्धतम निर्मम हूं अकेला,
विज्ञान दर्शन सुलक्षण मात्र मेरा ।
एकत्वका सतत चिंतन साधु ऐसा,
आदेय मान करते रहते हमेशा ॥२०॥

(હરિગીત)

હું એક શુધ્ધ મમત્વહીન હું જ્ઞાન દર્શન લક્ષી છું,
નિત ચિંતવે સાધુ શુચિ એકત્વ ઉપાદેય છું. ૨૦

अर्थ– मैं अकेला हूं, ममतारहित हूं, शुद्ध हूं और ज्ञानदर्शनस्वरूप हूं, इसलिये शुद्ध एकपना ही उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है, ऐसा निरन्तर चिन्तवन करना चाहिये।

હું એક છું, મમતા રહિત છું, શુધ્ધ છું, જ્ઞાનદર્શન લક્ષી છું, તેથી શુધ્ધ એકત્વજ ઉપાદેય છે, એમ સંયમીએ ચિંતવવું જોઈએ.

अथ अन्यत्वभावना

मादापिदरसहोदरपुत्तकलत्तादिबंधुसंदोहो ।
जीवस्स ण संबंधो णियकज्जवसेण वट्टंति ॥२१॥

माता पिता सुत सुता वनिता व भ्राता,
हैं जीवसे पृथक हैं रखते न नाता ।
ये बाह्यमें सहचरी दिख भी रहे हैं,
मोहाभिभूत मदिरा नित पी रहे हैं ॥२१॥

માતા પિતા બંધુ સહોદર પુત્ર સ્ત્રી આદિક લહું,
નહિ તે સંબંધી જીવનાં નિજ કાર્યવશ વર્તે સહુ. ૨૧

अर्थ– माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री आदि बन्धुजनोंका समूह अपने कार्यके वश (मतलबसे) सम्बन्ध रखता है, परन्तु यथार्थमें जीवका इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् ये सब जीवसे जुदे हैं।

માતા, પિતા, ભાઈ, પુત્ર, સ્ત્રી આદિ બંધુજનો તે જીવના સંબંધી નથી, પોતાનાં કાર્ય વશે તેઓ વર્તે છે.

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति ममणाहगोत्ति मण्णंतो ।
अप्पाणं ण हु सोयदि संसारमहण्णवे बुड्ढं ।।२२।।

स्वामी मरा मम, रहा मम प्राण प्यारा,
यों शोक नित्य करता जड ही विचारा।
पै डूबता भव पयोनिधिमें निजीकी,
चिंता कभी न करता गलती यही की ।।२२।।

नहि शोचतो संसारमां डूबेल प्राणी आत्मने,
परनी करे चिंता अे मारुं स्वामीनुं अेम-मानीने. २२

अर्थ– ये जीव इस संसाररूपी महासमुद्रमें पडे हुए अपने आत्मकी चिन्ता तो नहीं करते हैं, किन्तु यह मेरा है और यह मेरे स्वामीका है, इस प्रकार मानते हुए एक दूसरेकी चिन्ता करते हैं ।

આ સંસારરૂપી મહાસાગરમાં ડૂબેલો જીવ, પોતાના આત્માની તો જરાય ચિંતા કરતો નથી, પણ બીજાઓની ચિંતા કરે છે; વળી આ મારું છે, એ મારા સ્વામીનું છે, એમ માન્યા કરે છે.

अण्णं इमं सरीरादिगंपि जं होइ बाहिरं दव्वं ।
णाणं दंसणमादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं ॥२३॥

मैं शुद्ध चेतन, अचेतनसे निराला,
ऐसा सदैव कहता सम द्रष्टिवाला ।
रे! देह नेह करना अति दुःख पाना,
छोडो उसे तुम यही गुरुका बताना ॥२३॥

આ આત્મથી ભિન્ન શરીર આદિક બાહ્ય સર્વે દ્રવ્ય છે,
છે જ્ઞાન-દર્શન આત્મ એમજ ભાવ-અન્યત્વ ભાવ જે. ૨૩

अर्थ– शरीरादिक जो ये बाहिरी द्रव्य हैं, सो भी सब अपनेसे जुदे हैं और मेरा आत्मा ज्ञानदर्शनस्वरूप है, इस प्रकार अन्यत्व भावनाका तुमको चिन्तवन करना चाहिये।

શરીરાદિ જે બાહ્ય પદાર્થો છે તે બધાય મારાથી જુદા છે: અને આ મારો આત્મા જ્ઞાનદર્શનસ્વરૂપ છે. એમ અન્યત્વભાવના ચિંતવવા યોગ્ય છે.

अथ संसारभावना

पंचविहे संसारे जाइजरामरणरोगभयपउरे ।
जिणमग्गमपेच्छंतो जीवो परिभमदि चिरकालं ।।२४।।

संसार पंच विध है दुखसे भरा है,
है रोग शोक मृति जन्म जहां जरा हैं।
जो मूढ–मूढ निजको न निहारंता है,
संसारमें भटकता चिर हारता है ।।२४।।

नहि जाणतो जिनमार्गने जीव परिभ्रमे चिरकालथी,
पंचविध आ संसार जन्म जरा मरण भय-रोगथी. २४

अर्थ– यह जीव जिनमार्गकी ओर ध्यान नहीं देता है, इसलिये जन्म, बुढापा, मरण, रोग और भयसे भरे हुए पांच प्रकारके संसारमें अनादि कालसे भटक रहा है ।

જિનમાર્ગને નહિ જાણતો જીવ, જન્મ, જરા, મરણ, રોગ અને ભયથી પાંચ પ્રકારના સંસારમાં અનંતકાલથી પરિભ્રમે છે.

द्रव्य परिवर्तनका स्वरूप

सव्वेपि पोग्गला खलु एगे मुत्तुज्झिया हु जीवेण ।
असयं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ।।२५।।

संसारमें विषय पुदगलमें अनेकों,
भोगे तजे बहुत बार नितान्त देखो ।
संसार द्रव्य परिवर्तन वो रहा है,
अध्यात्मके विषयमें जग सो रहा है ।।२५।।

(વસંતતિલકા)

સંસારમાં વિષય પુદ્ગલ છે અનેક
તજિયા છે સર્વ ભોગી જીવે વાર અનેક
છોડો અહો ! ભ્રમણની આવી જૂઠી વિધિ
પામો સ્વરૂપ સુખને ગ્રહી સત્ય રીતિ. ૨૫

अर्थ– इस पुद्‌गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक ही जीव सम्पूर्ण पुद्‌गलवर्गणाओंको अनेकवार–अनन्तवार भोगता है, और छोड देता है। भावार्थ–कोई जीव जब अनंतानंत पुद्‌गलोंको अनंतवार ग्रहण करके छोडता है, तब उसका एक द्रव्यपरावर्तन होता है। इस जीवने ऐसे २ अनेक द्रव्यपरावर्तन किये हैं।

આ પુદ્ગલ પરિવર્તનરૂપ સંસારમાં એક જ જીવ સંપૂર્ણ પુદ્ગલવર્ગણાઓને અનેકવાર- અનંતવાર ભોગવે છે અને છોડે છે.

क्षेत्र परिवर्तनका स्वरूप

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं ।
उग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ।।२६।।

ऐसा न लोक भरमें थल ही रहा हो,
तूने गहा न तनको क्रमशः जहां हो ।
छोटे बडे घर सभी अवगाहनोंको,
संसार'क्षेत्र' पलटे बहुशः अनेकों ।।२६।।

એવું ન ક્ષેત્ર જગમાં કોઈ બાકી છે જ્યાં,
તે જન્મ વાર બહુ ગ્રહી નહિ છોડિયો જ્યાં,
ઊંચ નીચ સર્વ કુળમાં તું ઉપજ્યો છું,
સંસાર ક્ષેત્ર પરિવર્તનમાં રુલ્યો છું. ૨૬

अर्थ– क्षेत्रपरावर्तनरूप संसारमें अनेकवार भ्रमण करता हुआ जीव तीनों लोकोंके सम्पूर्ण क्षेत्रमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहां पर क्रमसे अपनी अवगाहना वा परिणामको लेकर उत्पन्न न हुआ हो। भावार्थ–लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं, उन सब प्रदेशोमें क्रमसे उत्पन्न होनेको तथा छोटेसे छोटे शरीरके प्रदेशोंसे लेकर बडेसे बडे शरीर तकके प्रदेशोंको क्रमसे पूरा करनेको क्षेत्रपरावर्तन कहते हैं ।

ક્ષેત્ર પરાવર્તનરૂપ સંસારમાં અનેકવાર ભ્રમણ કરતો થકો આ જીવ, ત્રણે લોકનાં સંપૂર્ણ ક્ષેત્રોમાં એવું કોઈ પણ સ્થાન નથી જ્યાં વારાફરતી વિવિધ અવગાહના કે પરિણામને કારણે ઉત્પન્ન થયો ન હોય.

काल परिवर्तनका स्वरूप

अवसप्पिणिउस्सप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु ।
जादो मुदो य बहुसो परिभमिदो कालसंसारे ॥२७॥

उतसर्पिणि व अवसर्पिणिकी अनेकों,
कालावलि बरतती अयि भव्य देखो ।
यों जन्म मृत्यु उनमें बहु बार पाये,
हो मूढ काल परिवर्तन भी कराये ॥२७॥

ઉત્સર્પિ જીવ અવસર્પિણીના અનેક
કાલાવલિ સતત સંચરતી વિભંગે
આ જન્મ-મૃત્યુ ઘટમાળ મહીં ડૂબ્યો છું
હે મૂઢ ! કોળિયો કાળ તણો થયો છું. ૨૭

अर्थ– कालपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके सम्पूर्ण समयों और आवलियोंमें अनेक वार जन्म धारण करता है और मरता है। भावार्थ– उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय होते हैं, उन सारे समयोंमें क्रमसे जन्म लेने और मरनेको कालपरावर्तन कहते हैं ।

કાલપરિવર્તનરૂપ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો જીવ ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણી કાળનાં સંપૂર્ણ સમયો અને આવલિઓમાં અનેક વાર જન્મ-મરણ કરી ચૂક્યો છે.

भव परिवर्तनका स्वरूप

णिरयाउजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लवा(गा)दु गेवेज्जा ।
मिच्छत्तसंसिदेण दु वहुसो वि भवट्ठिदीब्भमिदा ।।२८।।

तूने जघन्य नरकायु लिए बिताये,,
ग्रैवेयकांततक अंतिम आयु पाये ।
मिथ्यात्व धार भवके परिवर्तनोंको,
पूरे किये बहु व्यतीत युगों–युगोंको ।।२८।।

પામી જઘન્ય નરકાયુ બહુ ભ્રમાયો,
ગ્રૈવેયકો સુધીનું આયુ તું દીર્ઘ પામ્યો;
મિથ્યાત્વ ધારી પરિવર્તન ભવ તણાં આ,
પૂરાં કર્યાં ભટકતાં બહુ યુગયુગોમાં. ૨૮

अर्थ– इस मिथ्यात्वसंयुक्त जीवने नरककी छोटीसे छोटी आयुसे लेकर ऊपरके ग्रैवेयिक विमान तककी आयु क्रमसे अनेकवार पाकर भ्रमण किया है। भावार्थ– नरककी कमसे कम आयुसे लेकर ग्रैवेयिक विमानकी अधिकसे अधिक आयु तकके जितने भेद हैं, उन सबका क्रमसे भोगना भवपरावर्तन कहलाता है।

નરકની જઘન્ય આયુથી માંડી ગ્રૈવેયિક વિમાન પર્યંતની ઉત્કૃષ્ટ આયુમાં વારાફરતી અનેકવાર મિથ્યાત્વસહિત આ જીવે પરિભ્રમણ કર્યું છે.

भाव परिवर्तनका स्वरूप

सव्वे पयडिट्ठिदिओ अणुभागप्पदेसबंधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा भमिदो पुण भावसंसारे ।।२९।।

लो सर्व कर्म स्थिति यों अनुभाग बंधो,
बांधे प्रदेश विधिके सुन भव्य बंधो !
मिथ्यात्वके वश हुए भवमें भ्रमाये,
ऐसे अनंत भव भावमयी बिताये ।।२९।।

હા ! સર્વ કર્મસ્થિતિને અનુભાગબંધો,
બાંધ્યા પ્રદેશ વિધિના સુણ ભવ્ય બંધો;
મિથ્યાત્વને વશ થઈ ભવમાં ભ્રમાયો,
આવા અનંત ભવ ભાવમયી કમાયો. ૨૯

अर्थ– इस जीवने मिथ्यात्वके वशमें पड़कर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबंधके कारणभूत जितने प्रकारके परिणाम वा भाव हैं, उन सबको अनुभव करते हुए भावपरावर्तनरूप संसारमें अनेक वार भ्रमण किया है। भावार्थ– कर्मबंधोंके करनेवाले जितने प्रकारके भाव होते हैं, उन सबको क्रमसे अनुभव करनेको भावपरावर्तन कहते हैं ।

આ જીવે મિથ્યાત્વને વશ થઈને પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશબંધના કારણભૂત જેટલાં પ્રકારનાં પરિણામ કે ભાવ છે, તે સર્વનો અનુભવ કરીને ભાવ પરાવર્તનરૂપ સંસારમાં અનેકવાર પરિભ્રમણ કર્યું છે.

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पाबबुद्धिए ।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥३०॥

स्त्री पुत्र मोह वश ही धन है कमाता,
पापी बना विषम जीवन है चलाता ।
तो दान धर्म तजता निज भूल जाता,
संसारमें भटकता प्रतिकूल जाता ॥३०॥

(હરિગીત)

જે જીવ પુત્ર કલત્ર અર્થે ધન કમાયે પાપથી,
તે દયા દાન તજી ભટકતો દીર્ઘ ભવ સંતાપથી. ૩૦

अर्थ– जो जीव स्त्रीपुत्रोंके लिये नानाप्रकारकी पापबुद्धियोंसे धन कमाता है, और दया करना वा दान देना छोड देता है, वह संसारमें भटकता है।

જે જીવ પુત્ર, સ્ત્રી નિમિત્તે પાપ બુદ્ધિથી ધન કમાય છે અને દયા તથા દાન છોડે છે, તે સંસારમાં ભટકે છે.

मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधण्णोत्ति तिव्वकंखाए ।
चइऊण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ।।३१।।

स्त्री पुत्र धान्य धन ये मम कोष प्यारे,
यों तीव्र लोभ मद पी सब होश टारे ।
सदधर्मसे बहुत ही बस ऊब जाते,
मोही अगाध भवसागर डूब जाते ।।३१।।

આ પુત્ર મારો પત્ની મારી ધાન્ય ધન મારાં કહે,
જીવ તીવ્ર મોહે ધર્મ છોડી દીર્ઘ સંસારે વહે. ૩૧

अर्थ- 'यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है और यह मेरा धन धान्य है।' इस प्रकारकी गाढी लालसासे जीव घर्मबुद्धिको छोड देता है और इसी कारण फिर सब ओरसे अनादि संसारमें पडता है ।

આ મારો પુત્ર છે, આ મારી સ્ત્રી છે, અને આ મારા ધન-ધાન્ય છે, એવી તીવ્ર કાંક્ષાથી જીવ ધર્મબુદ્ધિને છોડે છે અને તે કારણે દીર્ઘ સંસારમાં પડે છે.

मिच्छोदयेण जीवो णिंदंतो जेणणभासियं धम्मं ।
कुधम्मकुलिंगकुतित्थं मण्णंतो भमदि संसारे ॥३२॥

मिथ्यात्वके उदयसे जिनधर्म निंदा,
पापी सदैव करता नहिं आत्मनिंदा ।
जाता कुतीर्थ, व कुलिंग कुधर्म माने,
संसारमें भटकता, सुन तू सयाने ॥३२॥

મિથ્યાત્વ ઉદયે જિન કથિત જીવ ધર્મની નિંદા કરે,
કુધર્મ ગુરુ તીર્થ માની ભવ મહીં ભટક્યા કરે. ૩૨

अर्थ– मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जीव जिनभगवानके कहे हुए धर्मकी निंदा करता है और बुरे धर्मों, पाखंडी गुरुओं और मिथ्याशास्त्रोंको पूज्य मानता हुआ संसारमें भटकता फिरता है ।

મિથ્યાત્વના ઉદય વડે જીવ, જિન ભગવાને કહેલા ધર્મની નિંદા કરી, કુધર્મ કુગુરુ અને કુતીર્થોને માની સંસારમાં ભટકે છે.

हंतूण जीवरासिं महुमंसं सेविऊण सुरपाणं ।
परदव्वपरकलत्तं गहिउण य भमदि संसारे ।।३३।।

हो क्रूर जीववध भी कर मांस खाता,
पीता सुरा मधु चखे तन दास भाता ।
पापी पराय धन स्त्री हरता सदा है,,
संसारमें गिर, सहे दुःख आपदा है ।।३३।।

(વસંતતિલકા)

જે ક્રૂરતાથી હિંસા કરી માંસ ખાતો,
મધુ-મદ્ય-મત્ત બની નિજપદને વીસરતો;
પર-અંગના-ધન વળી પણ છીનવી લેતો,
સંસાર-ઘોર-અટવી મહિં તે રઝળતો. ૩૩

अर्थ– यह प्राणी जीवोंके समूहको मार करके, शहद (मधु) और मांसका सेवन करके, शराब पीके, पराया धन और पराई स्त्रीको छीन करके संसारमें भटकता है ।

આ આત્મા જીવરાશિને ક્રૂરતાપૂર્વક હણીને, મધ માંસનું સેવન કરીને, શરાબ-પાન કરીને, પરધન તથા પરસ્ત્રીનું હરણ કરીને સંસારમાં ભટક્યા કરે છે.

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो ।
मोहंधयारसहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

संसारमें विषयके वश जो रहेगा,
सो यत्न रात–दिन भी अघका करेगा ।
मोहांधकारयुत जीवन जी रहा है,
संसारमें भटकता 'लघुधी' रहा है ॥३४॥

સંસારમાં વિષયને વશ જે બને છે,
તે રાત્રિદિન અઘવશ કરણી કરે છે;
મોહાંધદ્રષ્ટિયુક્ત જીવન જીવતો તે,
અલ્પજ્ઞ લોકમહિં તે ભટક્યા કરે છે. ૩૪

अर्थ– यह जीव मोहरूपी अंधकारसे अंधा होकर रातदिन विषयोंके निमित्तसे जो पाप होते हैं, उन्हें यत्नपूर्वक करता रहता है और इसीसे संसारमें पतन करता है।

મોહરૂપી અંધકારથી અંધ એવો આ જીવ રાતદિવસ વિષયોના નિમિત્તથી થતા પાપમાં યત્નપૂર્વક લાગેલો રહે છે અને તેથી જ સંસારમાં તેનું પતન થાય છે.

णिच्चिदरधातुसत्त य तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव ।
सुरणिरयतिरियचउरो चोददस मणुवे सदसहस्सा ।।३५।।

दोनों निगोद चउ थावर सप्त सप्त,
हैं लक्ष हो विकल इन्द्रिय है षडत्र ।
हैं वृक्ष लक्ष दश चौदह लक्ष मर्त्यं,
चौरासि लक्ष सब योनि सुजान मर्त्यं ।।३५।।

બન્ને નિગોદ ચઉ સ્થાવર સાત સાત,
--લાખો તથા વિકલ ઇન્દ્રિય છ: પિછાનો;
છે વૃક્ષ લાખ દસ માનવ ચૌદ જાણો,
ચોરાશી લાખ સૌ, બાર ઉમેરી જાણો. ૩૫

अर्थ– नित्यनिगोद, इतर निगोद और धातु अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय और वायुकायकी सात सात लाख (४२ लाख), वनस्पतिकायकी दश लाख, विकलेन्द्रियकी (द्वीन्दिय, तेइन्द्री, चोइन्द्रीकी) छह लाख, देव, नारकी और तिर्यंचोंकी चार चार लाख और मनुष्योंकी चौदह लाख, इस तरह सब मिलाकर चौरासी लाख योनियां होती हैं ।

નિત્ય નિગોદ, ઇતર નિગોદ અને ધાતુ અર્થાત્ પૃથ્વીકાય, જલકાય, અગ્નિકાય અને વાયુકાયની સાત સાત લાખ (૪૨ લાખ) વનસ્પતિકાયની દસલાખ, વિકલેન્દ્રિયની (બે,ત્રણ, ચાર ઇન્દ્રિયની) છ લાખ, દેવ નારકી અને તિર્યંચની ચાર ચાર લાખ અને મનુષ્યની ચૌદ લાખ આ રીતે બધી મળીને ૮૪ લાખ યોનિઓ થાય છે.

संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च ॥३६॥

मानापमान मिल जाय अलाभ होता,
होता कभी सुख कभी दुःख लाभ होता ।
होता वियोग विनियोग सुयोग होता,
संसारको निरख तू उपयोग जोता ॥३६॥

(હરિગીત)

સંસારમાં સહુ પ્રાણીને સંયોગ વિયોગો થાય છે,
સુખ દુ:ખ લાભાલાભને માનાપમાનો થાય છે. ૩૬

अर्थ- संसारमें जितने प्राणी हैं, उन सबको मिलना, बिछुरना, नफा, टोटा, सुख, दुख और मान तथा अपमान (तिरस्कार) निरन्तर हुआ ही करते हैं।

આ સંસારમાં સર્વ પ્રાણીઓને સંયોગ, વિયોગ, લાભાલાભ, સુખદુ:ખ અને માન અપમાન થયાં જ કરે છે.

कम्मणिमित्तं जीवो हिंडदि संसारघोरकांतारे ।
जीवस्स ण संसारो णिच्चयणयकम्मणिम्मुक्को ॥३७॥

हैं कर्मके उदयसे जग जीव सारे,
दिगमूढ घोर भवकाननमें बिचारे ।
संसार तत्त्व नहि निश्चयसे तथापि,
हैं जीव मुक्त विधिसे चिरसे अपापी ॥३७॥

પણ નિશ્ચયે નથી બંધ નથી સંસાર આત્માને ખરે,
જીવ કર્મ કારણ ઘોર વન સંસારમાં ભટક્યા કરે. ૩૭

अर्थ– यद्यपि यह जीव कर्मके निमित्तसे संसाररूपी बडे भारी वनमें भटकता रहता है परन्तु निश्चयनयसे (यथार्थमें) यह कर्मसे रहित है, और इसीलिये इसका भ्रमणरूप संसारसे कोई सम्बन्ध नहीं है ।

આ જીવ કર્મના નિમિત્તથી સંસારરૂપ ઘોર વનમાં ભટક્યા કરે છે, પરંતુ નિશ્ચયનયે આત્મા કર્મબંધ રહિત છે, તેને સંસાર નથી.

संसारमदिक्कंतो जीवोवादेयमिदि विचिंतिज्जो ।
संसारदुहक्कंतो जीवो सो हेयमिदि विचिंतिज्जो ।।३८।।

होता अतीत भवसे पढ़ आत्मगाथा,
आदेय–ध्येय वह जीव सदा सुहाता ।
संसार दुःख सहता दिन रैन रोता,
ऐसा विचार वह केवल हेय होता ।।३८।।

સંસારથી અતિક્રાન્ત જીવનું ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે,
સંસાર દુઃખાક્રાન્ત જીવનું ધ્યાન તજવા યોગ્ય છે. ૩૮

अर्थ– जो जीव संसारसे पार हो गया है, वह तो उपादेय अर्थात् ध्यान करने योग्य है, ऐसा विचार करना चाहिये और जो संसाररूपी दुःखोंसे घिरा हुआ है, वह हेय अर्थात् ध्यानयोग्य नहीं है, ऐसा चिन्तवन करना चाहिये। भावार्थ– परमात्मा ही ध्यान करने योग्य है, बहिरात्मा नहीं है ।

સંસારથી અતિક્રાન્ત (પાર પામેલા) જીવ ઉપાદેય છે અને તેમનું ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે. પણ સંસાર દુઃખથી આક્રાન્ત (ઘેરાયેલા) જીવનું ધ્યાન કરવા યોગ્ય નથી.

अथ लोकभावना

जीवादिपयट्ठाणं समवाओ सो णिरुच्चये लोगो ।
तिविहो हवेइ लोगो अहमज्झिमउड्ढभेयेण ।।३९।।

जीवादि द्रव्य–दल शोभित हो रहा है,
है लोक स्वीकृत सुनो तुम वो रहा है ।
पाताल मध्य पुनि ऊर्ध्व प्रभेद द्वारा,
सो लोक भी त्रिविध है दुःखका पिटारा ।।३९।।

જીવાદિ ષટ્ દ્રવ્યો તણો જે સમૂહ છે તે લોક છે,
તે અધો ઊર્ધ્વ સુમધ્ય ભેદે ત્રણ પ્રકારે લોક છે. ૩૯

अर्थ– जीवादि छह पदार्थोंका जो समूह है, उसे लोक कहते हैं और वह अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदोंसे तीन प्रकारका है ।

જીવાદિ છ પદાર્થોનો સમૂહ છે તે લોક કહેવાય છે. અને તે અધોલોક, મધ્યલોક અને ઉર્ધ્વલોકના ભેદથી ત્રણ પ્રકારે છે.

'णिरया हवंति हेट्ठा मज्झे दीबंबुरासयोसंखा ।
सग्गो तिसट्ठि भेओ एत्तो उड्ढं हवे मोक्खो ।।४०।।

नीचे जहां नरक, नारक नित्य रोते,
हैं मध्यमें जलधि द्वीप असंख्य होते ।
हैं ऊर्ध्व में स्वरग त्रेसठ भेदवाले,
लोकान्तमें परम मोक्ष, मुनीश पालें ।।४०।।

છે અધો લોકે નરક, દ્વીપ સાગર અસંખ્યા મધ્યમાં,
ત્રેસઠ પ્રકારે સ્વર્ગ ને છે મોક્ષ ઊર્ધ્વ વિલોકમાં. ૪૦

अर्थ- नरक अधोलोकमें हैं, असंख्यात द्वीप तथा समुद्र मध्यलोकमें हैं, और त्रेसठ प्रकारके स्वर्ग तथा मोक्ष ऊर्ध्वलोकमें हैं ।

નરક અધોલોકમાં છે, અસંખ્યાત દ્વીપ તથા સમુદ્ર મધ્યલોકમાં છે અને ત્રેસઠ પ્રકારના સ્વર્ગ તથા મોક્ષસ્થાન ઉર્ધ્વલોકમાં છે.

इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे ।
ति त्तिय एक्केक्केंदियणामा उडुआदितेसट्ठी ॥४१॥

हैं एकतीस पुनि सात व चार दो हैं,
है एक एक छह यों क्रमवार जो हैं ।
औ तीन बार त्रय हैं इक एक सारे,
ऋज्वादि ये पटल त्रेशठ हैं उजाले ॥४१॥

(વસંતતિલકા)

છે એકત્રીસ વળી સાત ને ચાર ચાર
વળી એક એક ષટ્ એ ક્રમવાર જે છે
ત્રણ ત્રણનું ત્રિક વળી એકનું એક જેમ
ઋજ્વાદિના પટલ ત્રેસઠ જાણો એમ. ૪૧

अर्थ – स्वर्गलोकमें ऋतु, चंद, विमल, वल्गु, वीर आदि ६३ विमान इन्द्रक संज्ञाके धारण करनेवाले हैं। उनका क्रम इस प्रकार है,–सौधर्म ईशान स्वर्गके ३१, सानत्कुमार माहेन्द्रके ७, ब्रह्म ब्रह्मोत्तरके ४, लांतव कापिष्टके २, शुक्र महाशुक्रका १, शतार सहस्रारका १,आनत,प्राणत, आरण ओर अच्युत इन चारकल्पोंके ६, अधोमध्य और ऊर्ध्व ग्रैवेय्रिकके तीन तीनके हिसाबसे ९, अनुदिशका १ और अनुत्तरका १ सब मिलाकर ६३।

સ્વર્ગલોકમાં ઋતુ, ચંદ્ર, વિમલ, વલ્ગુ, વીર આદિ ત્રેસઠ વિમાન ઇન્દ્રક સંજ્ઞાને ધારણ કરવાવાળાં છે. તેમનો ક્રમ આ પ્રમાણે છે- સૌધર્મ ઇશાન સ્વર્ગમાં ૩૧- સાનત્કુમાર માહેન્દ્રના ૭- બ્રહ્મ બ્રહ્મોત્તરનાં ૪ - લાંતવ કાપિષ્ટના ૨ - શુક્ર મહાશુક્રના ૧ - શતાર સહસ્રારના ૧ - આનત, પ્રાણત, આરણ અને અચ્યુત આ ચાર કલ્પોના ૬ - અધો મધ્ય અને ઉર્ધ્વ ગ્રૈવેયિકના ત્રણ ત્રણના હિસાબે ૯ - અનુદિશના ૧ અને અનુત્તરના ૧ આમ બધા મળીને કુલ ૬૩ વિમાન થયાં.

असुहेण णिरयतिरियं सुहउबजोगेण दिविजणरसोक्खं ।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोयं विचिंतिज्जो ।।४२।।

स्वर्गीय मर्त्य सुख हो शुभसे सुनो रे !
शुद्धोपयोग बलसे शिव हो गुणो रे ।
पाताल हो अशुभसे पशु या विचारो,
यों लोकचिंतन करो अघको विसारो ।।४२।।

(હરિગીત)

જીવ અશુભ ભાવે નરક પશુ, શુભ દેવ નર સુખ ભોગવે,
ને મોક્ષ પ્રાપ્તિ શુદ્ધથી એ લોકભાવો ચિન્તવે. ૪૨

अर्थ– यह जीव अशुभ विचारोंसे नरक तथा तिर्यंचगति पाता है, शुभविचारोंसे देवों तथा मनुष्योंके सुख भोगता है और शुद्ध उपयोगसे मोक्ष प्राप्त करता है, इस प्रकार लोक भावनाका चिन्तवन करना चाहिये।

આ જીવ અશુભ ભાવે નરક અને તિર્યંચગતિ પામે છે. શુભભાવે દેવ તથા મનુષ્યનાં સુખ ભોગવે છે અને શુદ્ધ ભાવથી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. એમ લોકભાવનાનું ચિંતવન કરવું.

अथ अशुचिभावना

अट्ठीहिं पडिबद्धं मंसविलित्तं तएण ओच्छण्णं ।
किमिसंकुलेहिं भरिदम, चोक्खं देहं सयाकालं ॥४३॥

पूरी ढकी चरमसे बहु अस्थियोंसे,
काया बंधी वलिपटी पल पेशियों से ।
कीडे जहां विलविला करते सदा हैं,
मैली घृणास्पद यही तन संपदा है ॥४३॥

છે અસ્થિથી પ્રતિબધ્ધ, માંસ વિલિપ્ત ચર્મ મઢેલ છે,
ભરપૂર કૃમિઓના સમૂહે દેહ સતત મલિન છે. ૪૩

अर्थ– हड्डियोंसे जकडी हुई है, मांससे लिपी हुई है, चमडेसे ढकी हुई है, और छोटे २ कीडोंके समूहसे भरी हुई है, इस तरहसे यह देह सदा ही मलिन है।

હાડકાંઓથી પ્રતિબધ્ધ, માંસથી વિલિપ્ત ચામડીથી મઢેલ અને કૃમિઓના સમૂહથી ભરપૂર એવો દેહ સદા મલિન છે.

दुग्गंधं बीभत्थं कलिमल(?) भरिदं अचेयणो मुत्तं ।
सडणपडणं सहावं देहं इदि चिंतये णिच्चं ।।४४।।

बीभत्स है तन अचेतन है विनाशी,
दुर्गन्ध मांसमलका घर रूपराशी ।
धारा स्वभाव सडना गलना सदा ही,
ऐसा सुचिंतन करो शिव–राह–राही ।।४४।।

દુર્ગંધમય બીભત્સ તન મળમૂત્રથી ભરપૂર છે,
જડ મૂર્ત પતન સ્ખલનશીલ નિત ભાવનાની જરૂર છે. ૪૪

अर्थ– यह देह दुर्गंधमय है, डरावनी है, मलमूत्रसे भरी हुई है, जड है, मूर्तीक (रूप, रस, गंध, स्पर्शवाली)है और क्षीण होनेवाली तथा विनाशीक स्वभाववाली है, इस तरह निरन्तर इसका विचार करते रहना चाहिये।

આ દેહ દુર્ગંધમય, બીભત્સ (ચીતરી ચડે તેવો) અનિષ્ટતમ, મૂત્રથી ભરપૂર, જડ, મૂર્તિક છે અને સ્ખલન (પતન) સ્વભાવી છે, એમ સદા ચિંતવવા યોગ્ય છે.

रसरुहिरमंसमेदट्ठीमज्जसंकुलं मुत्तपूयकिमिबहुलं ।
दुग्गंधमसुचि चम्ममयमणिच्चमचेयणं पडणम् ॥४५॥

मज्जा व मांस रस रक्त व मेदवाला,
है मूत्र पीब कृमिधाम शरीर कारा ।
दुर्गन्ध है अशुचि चर्ममयी विनाशी,
जानो अचेतन अनित्य अरे विलासी ॥४५॥

(વસંતતિલકા)

મજજા ને માંસ રસ રક્તને મેદવાળી
પરૂથી ભરેલ વળી મૂત્ર-કૃમિ ભરેલી
દુર્ગંધ અશુચિમય ચર્મથી છે મઢેલી
હે અજ્ઞ ! જાણ જડ દેહ અહો વિનાશી. ૪૫

अर्थ- यह देह रस, रक्त, मांस, मेदा और मज्जा (चर्बी) से भरी हुई है, मूत्र,पीब और कीडोंकी इसमें अधिकता है, दुर्गन्धमय है, अपवित्र है, चमडेसे ढकी हुई है, स्थिर नहीं है, अचेतन है और अन्तमें नष्ट हो जानेवाली है।

આ દેહ રસ, રક્ત, માંસ ,મેદા અને ચર્બીથી ભરેલો છે. મૂત્ર, પરૂ અને કૃમિ(કીડાઓ)ની તેનામાં અધિકતા છે, દુર્ગંધમય છે, અપવિત્ર છે, ચામડાથી મઢેલો છે, અસ્થિર છે, અચેતન છે અને અંતે નષ્ટ થવાનો છે.

देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणंतसुहणिलयो ।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदि णिच्चं भावणं कुज्जा ॥४६॥

है कर्मसे रहित है तनसे निराला,
होता अनन्त सुखधाम सदा निहाला ।
आत्मा सचेतन निकेतन है अनोखा,
भा भावना सतत तू इस भांति चोखा ॥४६॥

(હરિગીત)

આ દેહથી છે ભિન્ન આત્મા કર્મહીન વિશુધ્ધ છે,
એ ભાવના ભાવો નિરંતર સૌખ્યધામ સમૃધ્ધ છે. ૪૬

अर्थ– वास्तवमें आत्मा देहसे जुदा है, कर्मोंसे रहित है, अनन्त सुखोंका घर है, और इसलिये शुद्ध है, इसप्रकार निरन्तर ही भावना करते रहना चाहिये।

આત્મા દેહથી જુદો, કર્મરહિત, અનંત સુખનું ધામ છે, તેથી તે શુધ્ધ છે એમ નિત્ય ભાવના ભાવવી જોઈએ.

आस्रवानुप्रेक्षा

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पणपणचउतियभेदा सम्मं परिकित्तिदा समए ॥४७॥

मिथ्यात्व औ अविरती व कषाय चारों,
औ योग आस्रव रहें इनको विसारो ।
ये पांच पांच क्रमशः चउ तीन भाते,
सतशास्त्र शुद्ध इनका शुचि गीत गाते ॥४७॥

મિથ્યાત્વ ને અવિરત કષાયો યોગ આસ્રવ દ્વાર છે,
પંચ પંચ ચતુત્રિક ભેદ સમ્યકથી કહ્યા જિનશાસને. ૪૭

अर्थ– मिथ्यात्व, अविरति (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) कषाय और योग (मन वचन कायकी प्रवृत्ति) रूप परिणाम आस्रव अर्थात् कर्मोंके आनेके द्वार हैं, और उनके क्रमसे पांच, पांच, चार और तीन भेद जिनशासनमें भले प्रकार कहे हैं। भावार्थ–आत्माके मिथ्यात्वादिरूप परिणामोंका नाम आस्रव है।

મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય અને યોગરૂપ પરિણામ આસ્રવદ્વાર છે. તેના ક્રમશઃ પાંચ, પાંચ, ચાર અને ત્રણ ભેદ જિનશાસનમાં સમ્યક્પ્રકારે કહ્યા છે.

एयंतविणयविवरियसंसयमण्णाणमिदि हवे पंच ।
अविरमणं हिंसादी पंचविहो सो हवइ णियमेण ॥४८॥

एकान्त औ विनय औ विपरीत चौथा,
अज्ञान संशय करे निजरीत खोता ।
मिथ्यात्व यों नियमसे वह पंचधा है,
हिंसादिसे अविरती वह पंचधा है ॥४८॥

(વસંતતિલકા)
એકાંત ને વિનય ને વિપરીત ચોથું
અજ્ઞાન સંશય કરે નિજ જ્ઞાન ખોટું,
મિથ્યાત્વ આમ નિયમા પંચવિધ ધારો,
હિંસાદિ પાંચ વળી પાપ પ્રસિદ્ધ માનો. ૪૮

अर्थ– मिथ्यात्वके एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान ये पांच भेद हैं, तथा अविरतिके हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पांच भेद होते हैं। इनसे कम बढ नहीं होते हैं।

મિથ્યાત્વના એકાન્ત, વિનય, વિપરીત, સંશય અને અજ્ઞાન આ પાંચ ભેદ છે તથા અવિરતિના હિંસા, જૂઠ, ચોરી, કુશીલ અને પરિગ્રહ આ પાંચ ભેદ નિયમથી છે.

कोहो माणो माया लोहोवि य चउविहं कसायं खु ।
मणवचिकायेण पुणो जोगो तिवियप्पमिदि जाणे।।४९।।

माया प्रलोभ पुनि मान व क्रोध चारों,
होते कषाय दुःख दे, इनको विसारो ।
वाक्काय और मन ये त्रय योग होते,
वे सिद्ध योग बिन हो उपयोग ढोते ।।४९।।

માયા પ્રલોભ વળી માન ને ક્રોધ ચારે
તે છે કષાય દુ:ખદાયી અહો ! તે ત્યાગે;
ભાખ્યાં ત્રિયોગ મન ચંચળ દેહ વાણી
ભવ્યો અહો ! અવધરો ઉપયોગ આણી ! ૪૯

अर्थ– ऐसा जानना चाहिये कि, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषायके भेद हैं और मन, वचन तथा काय ये तीन योगके भेद हैं ।

ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ આ ચાર કષાયના ભેદ છે અને મન, વચન તથા કાયા એ ત્રણ યોગના ભેદ છે, એમ જાણો.

असुहेदरभेदेण दु एक्केक्कं वण्णिदं हवे दुविहं ।
आहारादी सण्णा असुहमणं इदि विजाणेहि ॥५०॥

होता द्विधा वह शुभाशुभ भेद द्वारा,
प्रत्येक योग समझो गुरुने प्रकारा ।
आहार आदिक रही वह चार संज्ञा,
होता वही अशुभ है 'मन' मान अज्ञा ॥५०॥

તે હોય છે દ્વિવિધ શુભ-અશુભ પ્રકારે
પ્રત્યેક યોગ ગુરુ તેજ રીતે પ્રમાણે
સંજ્ઞાઓ જે તુરીય કહી આહાર આદિ
તે અશુભ ચિત્તરૂપ ભવ્યજને પ્રમાણી. ૫૦

अर्थ– मन, वचन और काय ये अशुभ और शुभके भेदसे दो दो प्रकारके है । इनमेंसे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार प्रकारकी संज्ञाओं (वांछाओं) को अशुभमन जानना चाहिये। भावार्थ– जिस मनमें आहार आदिकी अत्यन्त लोलुपता हो, उसे अशुभमन कहते हैं ।

મન, વચન અને કાયાના અશુભ તેમજ શુભ એમ બે પ્રકાર છે. તેમાં આહાર, ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહરૂપ ચાર સંજ્ઞાઓને અશુભમન જાણો.

किण्हादितिण्णि लेस्सा करणजसोक्खेसु गिद्दिरिणामो ।
ईसाविसादभावो असुहमणंत्ति य जिणा वेंति ।।५१।।

लेश्या संगी अशुभ जो प्रतिकूल बाना,
धिक्कार इन्द्रिय सुखो नित झूल जाना ।
ईर्षा विषाद इनको जिनशास्त्र गाता,
ये ही रहे अशुभ सो मन दुःखदाता ।।५१।।

લેશ્યા બધી અશુભ ને પ્રતિકૂળ જાણો
સુખ ઇન્દ્રિના વિષરૂપે કરી નિત્ય માનો
ઈર્ષા વિષાદ કેવળ દુઃખરૂપ માનો
ભાવો બધા અશુભ આ સૌને પ્રમાણો. ૫૧

अर्थ- जिसमें कृष्ण,नील, कापोत ये तीन लेश्या हों, इन्द्रियसम्बन्धी सुखोंमें जिसके लोलुपतारूप परिणाम हों और ईर्षा (डाह) तथा विषाद (खेद) रूप जिसके भाव रहते हों, उसे भी श्रीजिनेन्द्रदेव अशुभ मन कहते हैं।

જેનામાં કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત આ ત્રણ લેશ્યા હોય, ઈન્દ્રિય સુખોમાં લોલુપતારૂપ પરિણામ હોય અને ઈર્ષા તથા વિષાદરૂપ જેમના ભાવ રહેતા હોય તેને શ્રી જિનેન્દ્રદેવ અશુભ મન કહે છે.

रागो दोसो मोहो हास्सादी–णोकसायपरिणामो ।
थूलो वा सुहुमो वा असुहमणोत्ति य जिणा वेंति।।५२।।

नौ नोकषायमय जो परिणाम् होना,
संमोह रोष रतिको अविराम ढोना ।।
हो स्थूल सूक्ष्म कुछ भी जिनका बताना,
वे ही रहे अशुभ सो मन दुःख बाना ।।५२।।

નૌ નોકષાય રૂપ જે પરિણામ થાય
વળી મોહ રોષ રતિ ભાવ વિભાવ થાય,
તે સ્થૂળ સૂક્ષ્મ વળી મિશ્રપણે વિરાજે
તે સર્વને અશુભરૂપ જિનો નિવાજે. ૫૨

अर्थ– राग, द्वेष, मोह, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप परिणाम भी चाहे वे तीव्र हों, चाहे मन्द हों, अशुभमन है, ऐसा जिनदेव कहते हैं।

રાગ, દ્વેષ, મોહ, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા, સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ અને નપુંસકવેદરૂપ પરિણામ- ભલે પછી તે તીવ્ર હોય કે મન્દ હોય - અશુભમન રૂપ છે, એમ જિનદેવ જણાવે છે.

भत्तिच्छिरायचोरकहाओ वयणं वियाण असुहमिदि ।
बंधणछेदणमारणकिरिया सा असुहकायेत्ति ।।५३।।

स्त्री राज चोर अरु भोजनकी कथायें,
माना बुरा वचन योग करें व्यथायें ।
औ छेदनादि वधनादि बुरी क्रियायें,
सो कायका अशुभ योग यती बतायें ।।५३।।

સ્ત્રી રાજ ચોર વળી ભોજનની કથાઓ
અપ્રશસ્ત વાણીરૂપ યોગ પ્રભુએ ભાખ્યો
ને છેદ-ભેદ-વધ રૂપી બુરી ક્રિયાઓ
તે કાયયોગ દુ:ખદાયી અશુભ ગાયો. ૫૩

अर्थ– भोजनकथा, स्त्रीकथा, राजकथा और चोरकथा करनेको अशुभवचन जानना चाहिये। और बांधने, छेदने और मारनेकी क्रियाओंको अशुभकाय कहते हैं।

ભોજનકથા, સ્ત્રીકથા, રાજકથા અને ચોરકથારૂપ વચનવ્યવહારને અશુભવચન જાણો તથા છેદન-ભેદન-બંધનરૂપ ક્રિયાઓને અશુભકાય જાણો.

मोत्तूण असुहभावं पुव्वुत्तं णिरवसेसदो दव्वं ।
वदसमिदिसीलसंजमपरिणामं सुहमणं जाणे ।।५४।।

पूर्वोक्त जो अशुभ भाव उन्हें विसारे,
छोड़े तथा अशुभ द्रव्य अशेष सारे ।
हो संयमी समिति शील व्रतों निभाना,
जानो उसे शुभ रहा मन योग बाना ।।५४।।

પૂર્વોકત જે અશુભભાવ સહુ વિસારે
ને પાપકારી સૌ દ્રવ્યવળી નિવારે
થઈ સંયમી સમિતિ-શીલ-વ્રતાદિ પાળે
તેને પ્રશસ્ત મનયોગ જિનેન્દ્ર ભાખે. ૫૪

अर्थ– पहले कहे हुए रागद्वेषादि परिणामोंको और सम्पूर्ण धनधान्यादि परिग्रहोंको छोडकर जो व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणाम होते हैं, उन्हें शुभमन जानना चाहिये।

પૂર્વોક્ત રાગદ્વેષાદિ પરિણામોને અને સંપૂર્ણ ધન-ધાન્યાદિ પરિગ્રહોને છોડીને જે વ્રત, સમિતિ, શીલ અને સંયમરૂપ પરિણામ કરે છે તેને શુભમન જાણો.

संसारछेदकारणवयणं सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं ।
जिणदेवादिसु पूजा सुहकायंत्ति य हवे चेट्ठा ॥५५॥

बोलो वही वचन जो भव दुःखहारी,
सो योग है वचनका शुभ सौख्यकारी ।
सद्देव शास्त्र गुरु पूजन लीन काया,
सो काय योग शुभ है जिन ईश गाया ॥५५॥

બોલો સહુ વચન જે ભય દુઃખહારી
ને વાણી યોગ શુભ છે શિવ સૌખ્યકારી,
સત્ દેવ-શાસ્ત્ર-ગુરુપૂજનયુક્ત કાયા
તે કાય યોગ શુભ જિન પ્રભુને બતાયા. ૫૫

अर्थ - जन्ममरणरूप संसारके नष्ट करनेवाले वचनोंको जिनभगवानने शुभवचन कहा है और जिनदेव, जिनगुरु तथा जिनशास्त्रोंकी पूजारूप कायकी चेष्टाको शुभकाय कहते हैं।

જન્મમરણરૂપ સંસારનો નાશ કરવાવાળાં વચનોને જિનભગવાને શુભવચન કહ્યાં છે અને જિનદેવ, જિનગુરુ તથા જિનશાસ્ત્રોની પૂજારૂપ શરીરની ચેષ્ટાને શુભકાય કહે છે.

जम्मसमुद्दे बहुदो (स–वीचिये) दुक्खजलचराकिण्णे ।
जीवस्स परिब्भमणं कम्मासवकारणं होदि ।।५६।।

जो दुःखरूप जल जंगमसे भरा है,
ले दोषरूप लहरें लहरा रहा है ।।
खाता, भवार्णव जहां यह जीव गोता,
है कर्म–आस्रव सहेतु सदीव होता ।।५६।।

જે જળતરંગ બહુ દુઃખરૂપે ભરેલો
ક્ષુધા તૃષાદિ દોષે વિધવિધ ભરેલો
તેવા ભવાટવીમહિં જીવ ખાય ગોતા
તે કર્મ આસ્રવ ઘડી બુધ એમ કે'તા. ૫૬

अर्थ– जिसमें क्षुधा तृषादि दोषरूपी तरंगें उठती हैं, और जो दुःखरूपी अनेक मच्छकच्छादि जलचरोंसे भरा हुआ है, ऐसे संसारसमुद्रमें कर्मोंके आस्रवके कारण ही जीव गोते खाता है। संसारमें भटकता फिरता है।

જેનામાં ક્ષુધા-તૃષાદિ દોષરૂપી તરંગો ઊઠતી રહે છે, જે દુઃખરૂપી અનેક જલચરોથી ભરેલો છે, એવા સંસાર-સમુદ્રમાં કર્માસ્રવના કારણે જ જીવ ગોતાં ખાય છે.

कम्मासवेण जीवो वूडदि संसारसागरे घोरे ।
जण्णाणवसं किरिया मोक्खणिमित्तं परंपरया ॥५७॥

ज्यों ही कुधी करम–आस्रव खूब पाता,
त्यों ही अगाध भवसागर डूब जाता ।
सद्ज्ञानमंडित क्रिया कर तू जरासे,
है मोक्षका वह निमित्त परंपरासे ॥५७॥

(હરિગીત)

છે જ્ઞાનપૂર્વક જે ક્રિયા તે મોક્ષનું કારણ બને;
સંસારરૂપ અંધારમાં જીવ કર્મ આસ્રવથી ડૂબે. ૫૭

अर्थ– जीव इस संसाररूपी महासमुद्रमें अज्ञानके वश कर्मोका आस्रव करके डूबता है। क्योंकि जो क्रिया ज्ञानपूर्वक होती है, वही परम्परासे मोक्षका कारण होती है (अज्ञानवश की हुई क्रिया नहीं)।

જીવ, આ ભયંકર સંસાર સાગરે કર્મોનો આસ્રવ કરીને ડૂબે છે, કેમકે જે ક્રિયા જ્ઞાનપૂર્વક હોય છે તે જ પરંપરા મોક્ષનું કારણ થાય છે.

आसवहेदू जीवो जम्मसमुद्दे णिमज्जदे खिप्पं ।
आसवकिरिया तम्हा मोक्खणिमित्तं ण चिंतेज्जो ॥५८॥

ज्यों ही कुधी करम आस्रव खूब पाता,
त्यों ही अगाध भवसागर डूब जाता ।
जो आस्रवा वह क्रिया शिवका न हेतु,
ऐसा विचार कर नित्य नितान्त रे तू ॥५८॥

જીવ આસ્રવોનાં કારણે સંસારમાં ભટકયા કરે;
તેથી કદી આસ્રવ ક્રિયા નહિ મોક્ષનું કારણ બને. ૫૮

अर्थ– जीव आस्रवके कारण संसारसमुद्रमें शीघ्र ही गोते खाता है। इसलिये जिन क्रियाओंसे कर्मोंका आगमन होता है, वे मोक्षको ले जानेवाली नहीं हैं। ऐसा चिन्तवन करना चाहिये।

જીવ આસ્રવના કારણે સંસારસમુદ્રમાં ગોથાં ખાય છે, તેથી આસ્રવ ક્રિયા મોક્ષ નિમિત્ત નથી, એમ ચિંતવવું જોઈએ.

पारंपज्जाएण दु आसवकिरियाए णत्थि णिव्वाणं ।
संसारगमणकारणमिदि णिंदं आसवो जाण ।।५९।।

हो सास्रवी वह क्रिया न परंपरासे,
निर्वाण हेतु तुम तो समझो जरा से।
संसारके गमनका वह हेतु होता,
है निंद्य आस्रव हमें भवमें डुबोता ।।५९।।

પૂર્વે કથિત આસ્રવ ક્રિયાથી પ્રાપ્તિ નહિ નિર્વાણની,
તે ગમનરૂપ સંસાર કારણ તેથી નિંદ્ય પીછાણવી. ૫૯

अर्थ– कर्मोका आस्रव करनेवाली क्रियासे परम्परासे भी निर्वाण नहीं हो सकता है। इसलिये संसारमें भटकानेवाले आस्रवको बुरा समझना चाहिये।

કર્મનો આસ્રવ કરનારી ક્રિયાથી પરંપરાએ પણ નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થતી નથી, માટે સંસારમાં ભટકાવવાના કારણરૂપ આસ્રવને નિંદ્ય જાણ.

पुव्वुत्तासवभेयो णिच्छयणयएण णत्थि जीवस्स ।
उहयासवणिम्मुक्कं अप्पाणं चिंतए णिच्चं ।।६०।।

पूर्वोक्त आस्रव विभेद निरे निरे हैं,
आत्मा विशुद्ध नयसे उनसे परे है।
आत्मा रहा उभय आस्रव मुक्त ऐसा,
चिंते सभी तज प्रमाद सुधी हमेशा ।।६०।।

પૂર્વોક્ત આસ્રવ ભેદ તે નિશ્ચયનયે નહિ જીવને,
તે ઉભય આસ્રવ રહિત આત્મા નિત્ય એમ વિચારજે. ૬૦

अर्थ– पहले जो मिथ्यात्व अव्रत आदि आस्रवके भेद कह आये हैं, वे निश्चयनयसे जीवके नहीं होते हैं। इसलिये निरन्तर ही आत्माको द्रव्य और भावरूप दोनों प्रकारके आस्रवोंसे रहित चिंतवन करना चाहिये।

પૂર્વોક્ત આસ્રવના ભેદો નિશ્ચયનયે આત્મામાં હોતા નથી, માટે આત્માનું દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ બન્ને પ્રકારનું આસ્રવરહિત ચિંતવન સદા કરવું જોઈએ.

अथ संवरभावना

चलमलिणमगाढं च वज्जिय सम्मत्तदिढकवाडेण ।
मिच्छत्तासवदारणिरोहो होदिति जिणेहिं णिदिदट्ठं ।।६१।।

सम्यक्त्व का दृढ कपाट विराट प्यारा,
जो शून्य है चलमलादि अगाढ द्वारा ।
मिथ्यात्वरूप उस आस्रव द्वारको है,
जो रोकता जिन कहें जग सार सो है ।।६१।।

ચલ મલ અગાઢ રહિત સમ્યક્ દૃઢ કમાડે થાય છે,
મિથ્યાત્વ આસ્રવ બંધ, જિનથી એમ નિર્દેશાય છે. ૬૧

अर्थ- जो चल, मलिन और अगाढ इन तीन दोषोंसे रहित है ऐसे सम्यक्त्वरुपी सघन किबाडोंसे मिथ्यात्वरूप आस्रवका द्वार बन्द होता है, ऐसा जिनभगवानने कहा है। भावार्थ- आत्माके सम्यक्त्वरुप परिणामोंसे मिथ्यात्वका आस्रव रुककर मिथ्यात्व- संवर होता है।

ચલ, મલ અને અગાઢ એવા ત્રણ દોષ રહિત જેના સમ્યક્ત્વ કમાડો દૃઢ છે, તેમાં મિથ્યાત્વરૂપ આસ્રવોના પ્રવેશદ્વાર બંધ થાય છે, એમ શ્રી જિનેન્દ્ર ભગવાને કહ્યું છે.

पंचमहव्वयमणसा अविरमणणिरोहणं हवे णियमा ।
कोहादिआसवाणं दाराणि कसायरहियपल्लगेहिं(?)।।६२।।

पाले मुनीश–मन पंच महाव्रतोंको,
रोके सही अविरतीमय आस्रवोंको ।
जो निष्कषायमय पावन भाव धारे,
रोके कषायमय आस्रव द्वार सारे ।।६२।।

व्रत અહિંસાદિકથી ખરે અવિરમણ રોકાય છે,
બંધ દ્વાર આસ્રવનાં બધાં ત્યમ નિષ્કષાયે થાય છે. ૬૨

अर्थ– अहिंसादि पांच महाव्रतरूप परिणामोंसे नियमपूर्वक हिंसादि पांचों अव्रतोंका आगमन रुक जाता है और क्रोधादि कषायरहिंत परिणामोंसे क्रोधादि आस्रवोंके द्वार बन्द हो जाते हैं। भावार्थ– पांच महाव्रतोंसे पांच पापोंका संवर होता है और कषायोंके रोकनेसे कषाय संवर होता है।

અહિંસાદિ પાંચ મહાવ્રતરૂપ પરિણામોથી હિંસાદિ પાંચ આસ્રવોનું આગમન નિશ્ચયપૂર્વક રોકાય છે અને ક્રોધાદિ કષાયરહિત આસ્રવોના દ્વાર બંધ થઈ શકે છે.

सुहजोगेसु पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स ।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण संभवदि ।।६३।।

औचित्य है कि शुभ योग विकास पाता,
सद्यः स्वतः अशुभ योग विनाश पाता ।
शुद्धोपयोग शुभयोगनको नशाता,
ऐसा वसंततिलका यह छन्द गाता ।।६३।।

શુભ યોગની પ્રવૃત્તિથી સંવર અશુભ યોગ થાય છે,
શુભ યોગનો નિરોધ તે શુદ્ધોપયોગે થાય છે. ૬૩

अर्थ– मन वचन कायकी शुभ प्रवृत्तियोंसे अशुभयोगका संवर होता है और केवल आत्माके ध्यानरूप शुद्धोपयोगसे शुभयोगका संवर होता है।

મન, વચન, કાયાની શુભ પ્રવૃત્તિઓથી અશુભ યોગનો સંવર થાય છે, અને શુદ્ધોપયોગથી શુભ યોગનો નિરોધ થાય છે.

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स ।
तम्हा संवरहेदू झाणोत्ति विचिंतये णिच्चं ।।६४।।

शुद्धोपयोग बल वो मिलता जिसे है,
तो धर्म शुक्लमय ध्यान मिले उसे है ।
है ध्यान हेतु विधि संवरका इसीसे,
ऐसा करो सतत चिंतन भी रुची से ।।६४।।

शुध्धोपयोगे ध्यान शुक्ल धर्म जीवने थाय छे,
तेथी निरंतर संवरेनुं ध्यान कारण थाय छे. ६४

अर्थ– इसके पश्चात् शुद्धोपयोगसे जीवके धर्मध्यान और शुक्लध्यान होते हैं। इसलिये संवरका कारण ध्यान है, ऐसा निरन्तर विचारते रहना चाहिये। भावार्थ– उत्तम क्षमादिरूप दश धर्मोके चिन्तवन करनेको धर्मध्यान कहते हैं और बाह्य परद्रव्योंके मिलापसे रहित केवल शुद्धात्माके ध्यानको शुक्लध्यान कहते हैं। इन दोनों ध्यानोंसे ही संवर होता है।

वळी शुध्धोपयोगथी जीवने धर्मध्यान अने शुक्लध्यान थाय छे. तेथी संवरनुं कारण ध्यान छे, एम निरंतर विचारवा योग्य छे.

जीवस्स ण संवरणं परमट्ठणएण सुद्धभावादो ।
संवरभावविमुक्कं अप्पाणं चिंतये णिच्चं ।।६५।।

जीवात्मामें न वर संवर भाव होता,
वो तो विशुद्धनयसे शुचि भाव ढोता ।
आत्मा विमुक्त वर संवर भाव से रे!
ऐसा सुचिंतन सदा कर चावसे रे! ।।६५।।

પરમાર્થ શુધ્ધ નિશ્ચયનયે સંવર નહિ કદી જીવમાં,
સંવર રહિત નિત ચિંતવો નિજ આત્મ શુધ્ધ સ્વરૂપમાં. ૬૫

अर्थ– परन्तु शुद्ध निश्चयनयसे (वास्तवमें) जीवके संवर ही नहीं है। इसलिये संवरके विकल्पसे रहित आत्माका निरन्तर शुद्धभावसे चिन्तवन करना चाहिये। भावार्थ– आस्रव संवर आदि अवस्थायें कर्मके सम्बन्धसे होती हैं, परन्तु वास्तवमें आत्मा कर्मजंजालसे रहित शुद्धस्वरूप है।

પરમ શુધ્ધ નિશ્ચયનયે જીવમાં સંવર જ નથી. તેથી સંવરના વિકલ્પ રહિત આત્માનું શુધ્ધ ભાવપૂર્વક નિરંતર ચિંતવન કરવા યોગ્ય છે.

अथ निर्जराभावना

बंधपदेसग्गलणं णिज्जरणं इदि हि जि (णवरोप)त्तम् ।
जेण हवे संवरणं तेण दु णिज्जरणमिदि जाणे ॥६६॥

जो भी बंधा पृथक् हो विधि आतमासे,
सो निर्जरा जिन कहे निजकी प्रभासे ।
हो संवरा जिस निजी परिणाम द्वारा,
हो निर्जरा वह उसी परिणाम द्वारा ॥६६॥

ગળી જાય બંધ પ્રદેશ તેને નિર્જરા જિનવર કહે,
પરિણામથી જે થાય સંવર તેને નિર્જરણા કહે. ૬૬

अर्थ– कर्मबन्धके पुद्‌गलवर्गणारूप प्रदेशोंका जिनका कि आत्माके साथ सम्बन्ध हो जाता है, झड जाना ही निर्जरा है ऐसा जिनदेवने कहा है। और जिन परिणामोंसे संवर होता है, उनसे निर्जरा भी होती है। भावार्थ– ऊपर कहे हुए जिन सम्यकत्व, महाव्रतादि परिणामोंसे संवर होता है, उनसे निर्जरा भी होती है। 'भी' कहनेका अभिप्राय यह है कि, निर्जराका मुख्य कारण तप है।

કર્મબંધના પ્રદેશોનું ગલન તે નિર્જરા છે, એમ શ્રી જિનેન્દ્રોએ કહ્યું છે, અને જે પરિણામથી સંવર થાય છે તેનાથી નિર્જરા થાય છે, એમ હે જીવ ! તું જાણ.

सा पुण दुविहा णेया सकालपक्का तवेण कयमाणा ।
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे बिदिया ॥६७॥

सो निर्जरा द्विविध एक असंयमीमें,
होती सभी गतिनमें इक संयमीमें ।
आद्या स्वकाल विधिका झरना कहाती,
दूजी तपश्चरणका फल रूप भाती ॥६७॥

વળી બે પ્રકારે નિર્જરા સવિપાક ને અવિપાક છે,
સવિપાક ચાતુર્ગતિ જીવો અવિપાક વ્રતસંયુક્તને. ૬૭

अर्थ– ऊपर कही हुई निर्जरा दो प्रकारकी है, एक वह जो अपना काल पूर्ण करके पकती है अर्थात् जिसमें कार्माणवर्गणा अपनी स्थितिको पूरी करके झड़ जाती हैं, और दूसरी वह जो तप करनेसे होती है अर्थात् जिसमें कार्माणवर्गणा अपनी बंधकी स्थिति तपके द्वारा बीचमें पूरी करके– पक करके खिर जाती हैं। इनमेंसे पहली स्वकालपक्व वा सविपाक निर्जरा चारों गतिवाले जीवोंके होती है और दूसरी तपकृता वा अविपाकनिर्जरा केवल व्रतधारी श्रावक तथा मुनियोंके होती है।

વળી નિર્જરા બે પ્રકારની છે, એક તો જે પોતાનો કાળ પૂર્ણ કરીને પાકે છે તે, અને બીજી તપ કરવાથી થાય છે, તેમાં પહેલી સવિપાક નિર્જરા ચારે ગતિના જીવોને થાય છે અને બીજી અવિપાક નિર્જરા વ્રતીઓને થાય છે.

अथ धर्मभावना

एयारसदसभेयं धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणियं ।
सागारणगाराणं उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं ।।६८।।

है धर्म ग्यारह तथा दश भेदवाला,
सम्यक्त्वसे सहित है निजवेदशाला ।
सागार और अनगार जिसे निभाते,
पा श्रेष्ठ सौख्य जिन यों हमको बताते ।।६८।।

સાગાર ને અનગાર સમ્યક્ સહિત ધર્મ જિનો કહે,
બહુ ભેદ તેના ક્રમશઃ એકાદશ અને દશ રૂપ છે. ૬૮

अर्थ– उत्तम सुख अर्थात् आत्मीक सुखमें लीन हुए जिनदेवने कहा है कि, श्रावकों और मुनियोंका धर्म जो कि सम्यक्त्वसहित होता है, क्रमसे श्रावकोंका ग्यारह प्रकारका है और मुनियोंका दश प्रकारका है।

શ્રાવક અને મુનિનો ધર્મ જે સમ્યક્ત્વ સહિત છે તેના ક્રમશઃ અગિયાર અને દશ પ્રકાર છે. તે ઉત્તમ આત્મિક સુખમાં લીન છે, એવા શ્રી જિનેન્દ્રોએ કહ્યું છે.

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।
बम्हारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥६९॥

सददर्शना सुव्रत सामयकी समक्ति,
औ प्रोषधी सचित त्याग दिवाभिभुक्ति,
है ब्रह्मचर्य व्रत सार्थक नाम पाता,
आरंभ संग अनुमोदन त्याग साता,
उद्दिष्टत्याग व्रत ग्यारह ये कहाते,
हैं एकदेश व्रत श्रावकके सुहाते ॥६९॥

(વસંતતિલકા)

સદ્દર્શના સુવ્રત પોષધ સામ્યભાવ
સચિત્ત ત્યાગ સંગ-આરંભ દિવાનું ભોજ
છે બ્રહ્મચર્ય વ્રત સાર્થક નામ કેવું
ઉદ્દિષ્ટાહાર વળી અનુમતિ ત્યાગ રે'વું
દસ-એક રૂપ કહી શ્રેણી જે ધર્મમાંહિ
વિવેકથી અનુસરી લહે શ્રેય પ્રાણી. ૬૯

अर्थ– दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास; सचित्तत्याग, रात्रिभक्तत्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये ग्यारह भेद देशव्रत अथवा श्रावकधर्मके हैं। ये भेद श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमाके नामसे प्रसिद्ध हैं।

દર્શન, વ્રત, સામાયિક, પ્રોષધોપવાસ, સચિત્તત્યાગ, દિવાભિભુક્તિત્યાગ, બ્રહ્મચર્ય, આરંભત્યાગ, પરિગ્રહત્યાગ, અનુમતિત્યાગ અને ઉદ્દિષ્ટાહારત્યાગ આ અગિયાર ભેદ દેશવ્રત અથવા શ્રાવકધર્મના છે. આ ભેદ શ્રાવકની અગિયાર પ્રતિમાના નામથી ઓળખાય છે.

उत्तमखममद्दवज्जवसच्चसउच्चं च संजमं चेव ।
तवतागमकिंचणहं बम्हा इदि दसविहं होदि ॥७०॥

प्यारी क्षमा मृदुलता ऋजुता सचाई,
औ शौच संयम धरो तप धार भाई ।
त्यागो परिग्रह अकिंचन गीत गा लो,
तो ! ब्रह्मचर्य सरमें डुबकी लगा लो ॥७०॥

(હરિગીત)

ઉત્તમ ક્ષમા આર્જવ મૃદુતા સત્ય સંયમ શૌચ ને,
તપ ત્યાગ આકિંચન અને બ્રહ્મચર્ય દશવિધ ધર્મ છે. ૭૦

अर्थ- उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ये दश भेद मुनिधर्मके हैं ।

ઉત્તમ ક્ષમા, માર્દવ, આર્જવ, સત્ય, શૌચ, સંયમ, તપ, ત્યાગ, આકિંચન અને બ્રહ્મચર્ય એ દશ ભેદ મુનિધર્મના છે

कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं ।
ण कुणदि किंचिवि कोहं तस्स खमा होदि धम्मोत्ति।।७१।।

साक्षातकार यदि हो उसगे, खड़ा है,
जो क्रोधका जनक बाहरमें अडा है ।
पै क्रोध लेशतक भी मनमें न लाते,
पाते क्षमा धरम वे, मुनि हैं कहाते ।।७१।।

(વસંતતિલકા)

સાક્ષાત્ ક્રોધ ઉત્પત્તિ કરાવનારું
કારણ ભલે ઉપજી પ્રત્યક્ષ સામું આવ્યું
તો પણ નહીં આક્રોશ લેશ જેને
શ્રી જિનવરો વૃષ ક્ષમાનિધિ કે'છે તેને. ૭૧

अर्थ- क्रोधके उत्पन्न होनेके साक्षात् बाहिरी कारण मिलने पर भी जो थोडा भी क्रोध नहीं करता है, उसके उत्तमक्षमा धर्म होता है।

ક્રોધની ઉત્પત્તિનાં સાક્ષાત્ બાહ્ય કારણ મળવા છતાં જેના અંતરમાં કિંચિત્ માત્ર ક્રોધ ઉત્પન્ન થતો નથી,તેને ભગવાને ઉત્તમક્ષમા ધર્મ કહ્યો છે.

कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ।।७२।।

हूं श्रेष्ठ जाति कुलमें श्रुतमें यशस्वी,
ज्ञानी सुशील अतिसुन्दर हूं तपस्वी ।
ऐसा नहीं श्रमण हो मन मान लाते,
औचित्य ! वे परम मार्दव धर्म पाते ।।७२।।

છું શ્રેષ્ઠ જાતિ-કુળમાં શ્રુતમાં યશસ્વી
જ્ઞાની સુશીલ અતિસુંદર છું તપસ્વી
એવું નહીં શ્રમણ જે મન માંહિ આણે
ઔચિત્ય ! તે પરમ માર્દવ ધર્મ પામે. ૭૨

अर्थ– जो मनस्वी पुरुष कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, शास्त्र और शीलादिके विषयमें थोड़ासा भी घमंड नहीं करता है, उसीके मार्दव धर्म होता है।

જે શ્રમણ કુળ, રૂપ, જાતિ, બુદ્ધિ, તપ, શાસ્ત્ર અને શીલાદિ સંબંધી અલ્પ પણ અહંકાર રાખતા નથી તેમને ઉત્તમ માર્દવ ધર્મ હોય છે

मोत्तूण कुडिलभावं णिम्मलहिदयेण चरदि जो समणो ।
अज्जवधम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण ।।७३।।

कौटिल्य छोड मुनि चारित पालता है,
हीराभ सा विमल मानस धारता है ।
सो तीसरा परम आर्जव धर्म पाता,
है अन्तमें नियमसे शिवशर्म पाता ।।७३।।

કૌટિલ્ય છોડી મુનિ ચારિત ધર્મ પાળે,
ચિત્ત પારદર્શી નિત જે અવધારી રાખે
તે તૃતીય ધર્મ આર્જવમહિં નિત્ય રાચે
શિવસૌખ્ય પામી નિજ આતમને ઉગારે. ૭૩

अर्थ– जो मनस्वी (शुभविचारवाला) प्राणी कुटिलभाव वा मायाचारी परिणामोंको छोडकर शुद्ध हृदयसे चारित्रका पालन करता है, उसके नियमसे तीसरा आर्जव नामका धर्म होता है। भावार्थ– छल कपटको छोडकर मन वचन कायाकी सरल प्रवृत्तिको आर्जव धर्म कहते हैं।

જે શ્રમણ કુટિલભાવ અથવા માયાચારનાં પરિણામોને છોડીને શુદ્ધ હૃદયથી ચારિત્રનું પાલન કરે છે, તેને નિયમથી આર્જવધર્મ હોય છે.

परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं ।

जो वददि भिक्खु तुइयो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ।।७४।।

मिश्री मिले वचन वे रुचते सभीको,
संताप हो श्रवणसे न कभी किसीको ।
कल्याण हो स्वपरका मुनि बोलता है,
सो सत्यधर्म उसका द्रग खोलता है ।।७४।।

ટાઢક મળે વચનથી સૌને રુચે જે,
કલેશિત બને ન મન કોઈનું જે થકી તે,
મુનિ તે વદે સ્વ-પરહિત ઉપજાવનારું
તે ધારનાર સત્ ધર્મ બતાવનારું. ૭૪

अर्थ– जो मुनि दूसरेको क्लेश पहुंचानेवाले वचनोंको छोडकर अपने और दूसरेके हित करने वाले वचन कहता है, उसके चौथा सत्यधर्म होता है। जिस वचनके कहनेसे अपना और पराया हित होता है तथा दूसरेको कष्ट नहीं पहुंचता है, उसे सत्य धर्म कहते हैं।

જે મુનિ બીજાને કષ્ટ પહોંચાડનારા વચનોનો ત્યાગ કરે છે અને સ્વપરહિતકારક વચનોને ઉચ્ચારે છે તેમને સત્યધર્મ હોય છે.

कंखाभावणिवित्तिं किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो ।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सौचं ॥७५॥

भोगाभिलाष जिसने मनसे हटाया,
वैराग्यभाव द्रढसे निजमें जगाया ।
ऐसा महा मुनिपना मुनि ही निभाता,
सो, शौच धर्ममय जीवन है बिताता ॥७५॥

ભોગાભિલાષ સૌ ચિત્ત થકી હટાવી
વૈરાગ્યભાવ મનમાં દ્રઢ ઉપજાવી
એવું મહા મુનિપણું મુનિ જે નિભાવે
તે ધીર-વીર સાધુ શુચિ ધર્મ ધારે. ૭૫

अर्थ– जो परममुनि इच्छाओंको रोककर और वैराग्यरूप विचारोंसे युक्त होकर आचरण करता है, उसके शौचधर्म होता है। भावार्थ– लोभकषायका त्याग करके उदासीनरूप परिणाम रखनेको शौचधर्म कहते हैं।

જે પરમમુનિ ઇચ્છાઓને રોકીને વૈરાગ્યભાવયુક્ત આચરણ કરે છે, તેમને શૌચધર્મ હોય છે.

वदसमिदिपालणाए दंडच्चाएण इन्दियजएण ।
परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा ।।७६।।

जो पालता समिति इन्द्रिय जीतता है,
है योग–रोध करता, व्रत धारता है।
ऐसा महा श्रमण जीवन जी रहा है,
सद्धर्म संयम–सुधा वह पी रहा है ।।७६।।

જે પાળતો સમિતિ ઇન્દ્રિય જીતતો જે
વળી યોગ-રોધ કરી સુવ્રતને ધરે જે
એવા મહામુનિનું જીવન દીપતું છે
સદ્ધર્મ સંયમ-સુધારસ વેરતું છે. ૭૬

अर्थ– व्रतों और समितियोंके पालनरूप, दंडत्याग अर्थात् मन वचन कायकी प्रवृत्तिके रोकनेरूप, और पांचो इन्द्रियोंके जीतनेरूप परिणाम जिस जीवके होते हैं, उसके संयमधर्म नियमसे होता है। सामान्यरूपसे पांचो इन्द्रियों और मनके रोकनेसे संयमधर्म होता है। व्रत, समिति, गुप्ति इसीके भेद है।

વ્રત-સમિતિના પાલનરૂપ, મન-વચન-કાયાની પ્રવૃત્તિના નિરોધરૂપ, પંચેન્દ્રિયના વિષયોને જીતવારૂપ જે જીવનાં પરિણામ હોય છે, તેને નિયમથી સંયમધર્મ હોય છે.

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसिज्झीए ।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण ॥७७॥

फोड़ा कषाय घटको मनको मरोड़ा,
लो साधुने विषयको विष मान छोडा ।
स्वाध्याय ध्यान बलसे निजको निहारा,
पाया नितान्त उसने तपधर्म प्यारा ॥७७॥

ફોડી કષાય-ઘટને મનને મરોડી
જેણે તજ્યાં વિષયને વિષ જેમ ધોળી
સ્વાધ્યાય-ધ્યાન-બળથી નિજને નિહાળે
નિતાન્ત ધર્મ તપમાં મુનિ તે વિરાજે. ૭૭

अर्थ– पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको तथा चारों कषायोंको रोककर शुभ ध्यानकी प्राप्तिके लिये जो अपनी आत्माका विचार करता है, उसके नियमसे तप होता है।

વિષય-કષાયનો નિરોધ કરીને ધ્યાનની સિદ્ધિ અર્થે જે જીવ પોતાના આત્માનો વિચાર કરે છે, તેને નિયમથી તપધર્મ હોય છે.

णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु ।
जो तस्स हवेच्चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ॥७८॥

वैराग्य धार भव भोग स्वदेहसे वो,
देखा स्वको यदि सुदूर विमोहसे हो ।
तो त्यागधर्म समझो उसने लिया है,
संदेश यों जगतको प्रभुने दिया है ॥७८॥

વૈરાગ્ય ધારી ભવ ભોગ સ્વદેહથી જે
નિર્મમ બની સ્વ, સ્વમાં સ્વથી દેખતો જે
તે જાણજો ધરમ ત્યાગ રૂડો ધરે છે
તેને જિનાગમ મહી મુનિવર કહે છે. ૭૮

अर्थ– जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि, जो जीव सारे परद्रव्योंसे मोह छोडकर संसार, देह और भोगों से उदासीनरूप परिणाम रखता है, उसको त्यागधर्म होता है।

જે જીવ સર્વે પરદ્રવ્યોમાંથી મોહ છોડીને સંસાર, દેહ અને ભોગોમાં ઉદાસીન પરિણામ રાખે છે, તેને ત્યાગધર્મ હોય છે એમ જિનેન્દ્ર ભગવાન કહે છે

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।
णिद्‌दंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्सकिंचण्हं ।।७९।।

जो अंतरंग बहिरंग निसंग नंगा,
होता दुःखी नहि सुखी बस नित्य चंगा ।
निर्द्वन्द्व हो विचरता अनगार होता,
भाई वही वर अकिंचनधर्म ढोता ।।७९।।

જે અંતરંગ બહિરંગ નિસંગ ભાવે
નિદ્વન્દ્વ થઈ વિચરતો નિર્લોભી રાહે
દુ:ખી નહિ સુખી નહિ નિજ મસ્તી માંહે
નિર્મમત ધર્મ મુનિપુંગવ તેને ધારે. ૭૯

अर्थ– जो मुनि सब प्रकारके परिग्रहोंसे रहित होकर और सुख दुःखके देनेवाले कर्मजनित निजभावोंको रोककर निर्द्वन्द्वतासे अर्थात् निश्चिन्ततासे आचरण करता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है । भावार्थ– अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहके छोडनेको आकिंचन्य कहते हैं।

જે મુનિ સર્વ પ્રકારના પરિગ્રહોનો ત્યાગ કરીને સુખ-દુ:ખ ઉત્પન્ન કરવાવાળા કર્મજનિત ભાવોને રોકીને નિર્દ્વન્દ્વતારૂપ આચરણ કરે છે તેમને આકિંચનધર્મ હોય છે.

सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावम् ।
सो बम्हचेरभावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि ॥८०॥

सर्वांग देखकर भी वनिता जनोंके,
होते न मुग्ध उनमें मुनि हैं अनोखे ।
तो ब्रह्मचर्य व्रतधारक वे रहे हैं,
कन्दर्प–दर्प–अपहारक वे रहे हैं ॥८०॥

સર્વાંગ દેખી પણ જે વનિતા જનોના,
લવલેશ ભાવ નહીં મોહ તણો ઊગે જ્યાં,
તો બ્રહ્મચર્ય વ્રત ધારક તે બને છે
કંદર્પ-દર્પ અપહારક તે ઠરે છે. ૮૦

अर्थ– जो पुण्यात्मा स्त्रियोंके सारे सुन्दर अंगोंको देखकर उनमें रागरूप बुरे परिणाम करना छोड देता है, वही दुद्धर ब्रह्मचर्यधर्मको धारण करता है।

જે પુણ્યાત્મા, સ્ત્રીઓનાં સુંદર અંગોનું નિરીક્ષણ થવા છતાં રાગરૂપ પરિણામ કરતો નથી, તેને દુધ્ધર બ્રહ્મચર્યધર્મ હોય છે.

सावयधम्मं चत्ता जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो ।
सो ण य वज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चिंतये णिच्चं ॥८१॥

सागार धर्म तज के अनगार होते,
शास्त्रानुसार यतिके व्रतसार जोते ।
रीते रहे न शिवसे अनिवार्य पाते,
यों धर्म चिंतन करो अयि ! आर्य तातें ॥८१॥

(હરિગીત)

તજી ગૃહસ્થ ધર્મ મુનિ ધરમ સમ્યક્ પ્રકારે પાળતો,
પ્રાપ્તિ કરે તે મોક્ષની જે ધર્મ નિત્ય વિચારતો. ૮૧

अर्थ– जो जीव श्रावकधर्मको छोडकर मुनियोंके धर्मका आचरण करता है, वह मोक्षको पा लेता है, इस प्रकार धर्मभावनाका सदा ही चिन्तवन करते रहना चाहिये। भावार्थ– यद्यपि परम्परासे श्रावकधर्म भी मोक्षका कारण है, परन्तु वास्तवमें मुनिधर्मसे ही साक्षात् मोक्ष होता है, इसलिये इसे ही धारण करनेका उपदेश दिया है।

જે જીવ શ્રાવક ધર્મ છોડી યતિધર્મ આચરે છે, તે મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે. એમ ધર્મ ભાવનાનું સદા ચિંતવન કરવું.

णिच्छयणएण जीवो सागारणगारधम्मदो भिण्णो ।
मज्झत्थभावणाए सुद्धप्पं चिंतये णिच्चं ॥८२॥

सागारधर्म यतिधर्म निरे निरे हैं,
आतम विशुद्धनयसे उनसे परे है ।
मध्यस्थभाव उनमें रखना इसीसे,
शुद्धात्मचिंतन सदा करना रुचीसे ॥८२॥

નિશ્ચયનયે સાગાર કે અનગારથી જીવ ભિન્ન છે,
માધ્યસ્થ ઉર શુધ્ધાત્મનું નિત ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે. ૮૨

अर्थ– जीव निश्चयनयसे श्रावक और मुनिधर्मसे बिलकुल जुदा है इसलिये रागद्वेषरहित परिणामोंसे शुद्धस्वरूप आत्माका ही सदा ध्यान करना चाहिये।

જીવ નિશ્ચયનયે શ્રાવકધર્મ અને મુનિધર્મથી ભિન્ન છે, માટે માધ્યસ્થભાવ શુધ્ધાત્માનું જ સદા ધ્યાન કરવું જોઈએ.

अथ बोधिदुर्लभभावना

उप्पज्जदि सण्णाणं जेण उवाएण तस्सुवायस्स ।
चिंता हवेइ बोही अच्चंत्तं दुल्लहं होदि ॥८३॥

सद्ज्ञान होय जिसभांति उपाय द्वारा,
चिंता करें उस उपायनकी सुचारा ।
चिंता वही परमबोधि अहो कहाती,
सो बोधिदुर्लभ अतीव मुझे सुहाती ॥८३॥

કોઈ ઉપાયે રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ મળવાનું કરો,
અત્યંત દુર્લભ બોધિના ઉપાયનું ચિંતન કરો. ૮૩

अर्थ– जिस उपायसे सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति हो, उस उपायकी चिन्ता करनेको अत्यन्त दुर्लभ बोधिभावना कहते हैं। क्योंकि बोधि अर्थात् सम्यग्ज्ञानका पाना बहुत ही कठिन है।

જે કોઈ ઉપાયથી રત્નત્રય (સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રની એકતા) ની ઉત્પત્તિ થાય તે ઉપાયનું ચિંતન કરવું તેને અત્યંત દુર્લભબોધિભાવના કહે છે.

कम्मुदयजपज्जाया हेयं खाओवसमियणाणं खु ।
सगदव्वमुवादेयं णिच्छयदो होदि सण्णाणं ॥८४॥

जो भी क्षयोपशम ज्ञाननकी छटायें,
हैं हेय कर्मवश लो उपजी दशायें ।
आदेय मात्र निज आतमद्रव्य होता, ,
सद्ज्ञान सो यह सुनिश्चय भव्य होता ॥८४॥

(વસંતતિલકા)

જે પણ ક્ષયોપશમજ્ઞાન જનિત છટાઓ,
તે હેય, કર્મવશ થઈ બનતી દશાઓ,
આદેય માત્ર નિજ આતમ દ્રવ્ય જાણે,
સદ્દ્જ્ઞાન નિશ્ચય થકી જિન એમ ભાખે. ૮૪

अर्थ– अशुद्ध निश्चयनयसे क्षायोपशमिकज्ञान कर्मोंके उदयसे जो कि परद्रव्य हैं उत्पन्न होता है, इसलिय हेय अर्थात् त्यागने योग्य है और सम्यग्ज्ञान (बोधि) स्वकद्रव्य है अर्थात् आत्माका निज भाव है, इसलिये उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है।

અશુધ્ધ નિશ્ચયનયથી ક્ષાયોપશમિક જ્ઞાન કર્મોદયવશ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી. હેય છે અને સમ્યગ્જ્ઞાન આત્માનો નિજસ્વભાવ છે, તેથી ઉપાદેય છે.

मूलुत्तरपयडीओ मिच्छत्तादी असंखलोगपरिमाणा ।
परदव्वं सगदव्वं अप्पा इदि णिच्छयणएण ॥८५॥

होते असंख्यतम लोकप्रमाण सारे,
मूलोत्तरादि विधि ये परद्रव्य न्यारे ।
आत्मा विशुद्धनयसे निज द्रव्य भाता,
ऐसा जिनागम निरंतर नित्य गाता ॥८५॥

ઉપજે અસંખ્યતમ લોકપ્રમાણ સારા,
મૂળોત્તરાદિ પ્રકૃતિ પરદ્રવ્ય ન્યારા,
આત્મા વિશુદ્ધ નિજદ્રવ્ય રહી સુહાય,
એ ગાન જિનાગમ નિરંતર નિત્ય ગાય. ૮૫

अर्थ– अशुद्ध निश्चयनयसे कर्मोंकी जो मिथ्यात्व आदि मूलप्रकृतियां वा उत्तर प्रकृतियां गिनतीमें असंख्यातलोकके बराबर हैं, वे परद्रव्य हैं अर्थात् आत्मासे जुदी हैं और आत्मा निज द्रव्य है ।

અશુદ્ધ નિશ્ચયનયથી કર્મોની જે મિથ્યાત્વાદિ મૂલ અથવા ઉત્તર પ્રકૃતિઓ છે તે અસંખ્યાત લોકપ્રમાણ છે, તે સર્વ પરદ્રવ્ય છે, આત્માથી ભિન્ન છે અને આત્મા નિજ દ્રવ્ય છે.

एवं जायदि णाणं हेयमुबादेय णिच्छये णत्थि ।
चिंतेज्जइ मुणि बोहिं संसारविरमणट्ठे य ॥८६॥

ऐसा सुचिंतन जभी दिन रात होता,
आदेय हेय वह क्या वह ज्ञात होता ।
आदेय हेय नहि निश्चयमें सयाने,
चिंतो सुबोध मुनि सो भवकूल पाने ॥८६॥

એવું સુચિંતન થતું દિનરાત જ્યારે,
આદેય હેય તણું જ્ઞાન થતું જ ત્યારે,
આદેય હેય નથી નિશ્ચયમાં અહોહો!
ચિન્માત્રરૂપ અનુભૂતિ મુનિ લહો જો. ૮૬

अर्थ– इस प्रकार अशुद्धनिश्चयनयसे ज्ञान हेय–उपादेयरूप होता है, परन्तु पीछे उसमें (ज्ञानमें) शुद्ध निश्चयनयसे हेय और उपादेयरूप विकल्प भी नहीं रहता है। मुनिको संसारसे विरक्त होनेके लिए सम्यग्ज्ञानका (बोधिभावनाका) इसी रूपमें चिन्तवन करना चाहिये ।

આ રીતે અશુદ્ધ નિશ્ચયનયથી જ્ઞાન હેય-ઉપાદેયરૂપ હોય છે, પરંતુ શુદ્ધ નિશ્ચયનયથી તો જ્ઞાનમાં હેય-ઉપાદેયરૂપ વિકલ્પ પણ રહેતો નથી. સંસારથી વિરક્ત થવા માટે મુનિએ આ રીતે સમ્યક્જ્ઞાનનું (બોધિભાવનાનું) ચિંતવન કરવું જોઈએ.

बारसअणुवेक्खाओ पच्चक्खाणं तहेव पडिक्कमणं ।
आलोयणं समाही तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ।।८७।।

है वस्तुतः सकल बारह भावनायें,
आलोचना सुखद शुद्ध समाधियां ये ।
येही प्रतिक्रमण है बस प्रत्यख्याना,
भा भावना नित अतः इनकी सयाना ।।८७।।

(હરિગીત)
પ્રતિક્રમણ પ્રત્યાખ્યાન આલોચન સમાધિરૂપ છે,
દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા નિરંતર ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે. ૮૭

अर्थ– ये बारह भावना ही प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना और समाधि (ध्यान) स्वरूप हैं, इसलिये निरन्तर इन्हींका चिंतवन करना चाहिये ।

આ દ્વાદશાનુપ્રેક્ષા (બાર ભાવના જ) પ્રત્યાખ્યાન, પ્રતિક્રમણ, આલોચના, સમાધિસ્વરૂપ છે, માટે નિરંતર અનુપ્રેક્ષાનું ચિંતવન કરવું જોઈએ.

रत्तिदिवं पडिकमणं पच्चक्खाणं समाहिं सामइयं।
आलोयणं पकुव्वदि जदि विज्जदि अप्पणो सत्ती ॥८८॥

आलोचना सुसमता व समाधि पाले,
सच्चा प्रतिक्रमणका शुचिभाव भा ले ।
औ प्रत्यख्यान कर रे दिन रात भाई,
है चांदनी क्षणिक तो फिर रात आई ॥८८॥

જો આત્મશક્તિ હોય તો પ્રતિક્રમણ પ્રત્યાખ્યાનને,
નિશદિન કરો આલોચના સામાયિક તેમજ ધ્યાનને. ૮૮

अर्थ- यदि अपनी शक्ति हो, तो प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, सामायिक और आलोचना रातदिन करते रहो।

જો પોતાની શક્તિ હોય તો પ્રતિક્રમણ, પ્રત્યાખ્યાન, સમાધિ, સામાયિક અને આલોચના રાતદિન કરો.

मोक्खगया जे पुरिसा अणाइकालेण बारअणुवेक्खं ।
परिभाविऊण सम्मं पणमामि पुणो पुणो तेसिं ।।८९।।

भा बार बार बस, बारह भावनायें,
वे भूतमें शिव गये जिन भाव पाये ।
मैं बार बार उनको प्रणमूं त्रिसंध्या,
मेरा प्रयोजन यही तज दूं अविद्या ।।८९।।

મોક્ષે ગયા જે અનાદિથી કરી ધ્યાન દ્વાદશ ભાવને,
સમ્યક્ પ્રકારે વાર વાર પ્રણામ કરું હું તેમને. ૮૯

अर्थ– जो पुरुष इन बारह भावनाओंका चिंतवन करके अनादि कालसे आजतक मोक्षको गये हैं, उनको मैं मनवचनकायपूर्वक बार बार नमस्कार करता हूं।

જે મહાપુરુષો આ બાર ભાવનાનું ચિંતવન કરી મોક્ષે ગયા છે, તેમને હું સમ્યક્પ્રકારે વારંવાર નમસ્કાર કરું છું.

किं पलवियेण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले ।
सेझंति य जे (भ) विया तज्जाणह तस्स माहप्पं ॥९०॥

जो भी हुए विगतमें शिव और आगे–,
होंगे नितान्त पुरषोत्तम और जागे ।
माहात्म्यमात्र वह द्वादश भावनाका,
क्या अर्थ है अब सुदीर्घ प्ररूपणाका ॥९०॥

ભૂતકાલ જે ગતિ સિધ્ધ પામ્યા ને ભવિષ્યે પામશે,
મહિમા જ દ્વાદશ ભાવનો 'શુનિ' ભાવશે તે પામશે. ૯૦

अर्थ– इस विषयमें अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है। इतना ही बहुत है कि भूतकालमें जितने श्रेष्ठपुरुष सिद्ध हुए हैं और जो आगे होंगे वे सब इन्हीं भावनाओंका चिंतवन करके ही हुए हैं। इसे भावनाओंका ही माहात्म्य समझना चाहिये।

ભૂતકાલમાં જેટલા શ્રેષ્ઠ પુરુષો સિધ્ધ થયા છે અને ભવિષ્યમાં જે સિધ્ધ થશે તે આ ભાવનાનું માહાત્મ્ય છે.

इदि णिच्चयववहारं जं भणियं कुंदकुंदमुणिणाहें ।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं ॥९१॥

जो कुन्दकुन्द मुनि नायकने निभाया,
है निश्चयादि व्यवहार हमें सुनाया ।
भाता विशुद्ध मनसे इसको वही है,
निर्वाण प्राप्त करता शिवकी मही है ॥९१॥

મુનિ કુંદકુંદે ભાવનાઓ શ્રેષ્ઠ જે ભાવી અહીં,
વ્યવહાર નિશ્ચયનય વડે તે સર્વને ગૂંથી અહીં,
નિજ શ્રેય અર્થે ભવ્યજન જો ભાવશો ઉરમાં સદા,
તો શીઘ્ર સુખ નિર્વાણ લહી વર પ્રાપ્ત કરશો પદ મુદા. ૯૧

अर्थ– इस प्रकार निश्चय और व्यवहार नयसे यह बारह भावनाओंका स्वरूप जो मुनियोंके स्वामी श्रीकुन्दकुन्दाचार्यने कहा है, उसे जो पुरुष शुद्धचित्तसे चिंतवन करेगा, वह मोक्षको प्राप्त करेगा।

આ પ્રકારે નિશ્ચય વ્યવહારનયથી આ બાર ભાવનાઓનું સ્વરૂપ મુનિનાથ શ્રી કુંદકુંદાચાર્યે કહ્યું છે. જે પુરુષ શુદ્ધચિત્તથી તેનું ચિંતવન કરશે તે અવશ્ય પરમનિર્વાણને પામશે.

इदि बारसअणुवेक्खा

हिन्दी पद्यानुवादक आचार्यश्री विद्यासागरजीकी जीवनझांकी

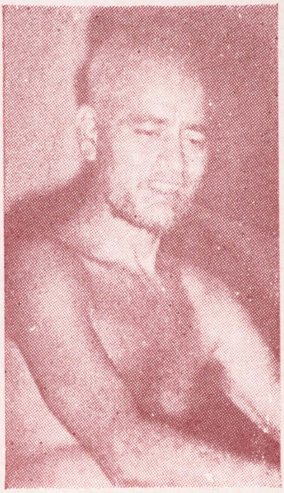

जन्म नामकरण : विद्याधर

जन्मतिथि : आश्विन शुक्ला पूर्णिमा
वि.सं. २००३; १०–१०–१९४६

जन्मस्थल : ग्राम सदलगा (जि.बेलगाम)
कर्णाटक

पितृनाम : श्री मल्लप्पाजी
(मुनि श्री मल्लिसागरजी)

मातृनाम : श्री श्रीमतीजी
(आर्यिका समयमतीजी)

मातृभाषा : कन्नड

मुनि दीक्षा : अषाढ शुक्ला पंचमी वि.सं.
२०२५ तदनुसार ३० जून १९६८ अजमेरमें ।

आचार्यपद : मगसिर कृष्ण द्वितीया वि.सं. २०२९ तदनुसार २१ नवम्बर
१९७२ नसीराबाद (राज.)में ।

शिक्षा–दीक्षा गुरु : आचार्यश्री ज्ञानसागरजी महाराज ।

चारित्र चक्रवर्ती आ.श्री शान्तिसागर महाराजके उपदेशामृतने बचपनमें विरक्तिके बीज बोये और आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत आ.श्री देशभूषणजीसे ग्रहण किया । आ.श्री ज्ञानसागरजीसे शिक्षा और मुनिदीक्षा प्राप्त की।

आ.श्री विद्यासागरजीको जहां प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, कन्नड आदि अनेक भाषाओंमें प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त है, वहीं दर्शन, इतिहास, संस्कृति, न्याय, व्याकरण, साहित्य, मनोविज्ञान और योग विद्याओंमें अनुपम वैदुष्य भी उपलब्ध है। आपमें आशुकवित्व और प्रत्युत्पन्नमतित्व अत्यन्त प्रशस्य गुण हैं।

आचार्यश्री स्वसाधनाके साथ, निरन्तर ज्ञानाभ्यासमें प्रवृत्त रहते हैं। आपने भव्य जीवोंके आत्मकल्याण हेतु अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन किया है और मां भारतीके भण्डारको भरा है। आपके द्वारा लिखित एवं अनुवादित रचनाओंकी संख्या करीब ५० है। आपसे दीक्षित करीब ५० साधु–साध्वीजी एवं १०० के करीब बालब्रह्मचारी भाई–बहन हैं।

भ. कुन्दकुन्दाचार्य-स्तुति

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः
कुन्दप्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः ।
यश्चारु चारण कराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥

(चन्द्रगिरि पर्वतका शिलालेख)

कुन्दपुष्पकी शोभाको धारण करनेवाली जिनकी कीर्तिसे दिशाएं विभूषित हुई हैं, जो चरणोंके – चारणऋद्धिधारी महामुनियोंके – सुन्दर हस्तकमलोंके भ्रमर थे और जिन पवित्रात्माने भरतक्षेत्रमें श्रुतकी प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किसके द्वारा वंदनीय नहीं ?

हे कुन्दकुन्दादि आचार्यों ! आपके वचन भी स्वरूपानुसंधानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं इसके लिए आपको अतिशय भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ।

– श्रीमद् राजचन्द

जासके मुखारविन्दतैं प्रकास भास वृन्द
स्यादवाद जैन बैन इंद कुन्दकुन्दसे
तासके अभ्यासतैं विकास भेदज्ञान होत
मूढ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे ।
देत हैं असीस सीस नाय इंद चंद जाहि
मोह-मार-खंड-मारतंड कुन्दकुन्दसे
विसुद्धि-बुद्धि-वृद्धिदा प्रसिद्ध-रिद्धि-सिद्धिदा
हुए न हैं न होहिंगे मुनिंद कुन्दकुन्दसे ॥

– कविवर वृन्दावन